

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_182456**

UNIVERSAL  
LIBRARY



हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,  
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

दसवीं बार

त, १९४८

मुद्रक,

कन्हैयालाल शाह

ओरियण्ट प्रिंटिंग हाउस,

दादीरोठ अग्यारी रोड, बम्बई

## समालोचना

१

कवि द्विजेन्द्रलाल राय द्वारा कल्पित ग्रीक-कन्या हेलन\* की तरह मुगल इतिहासकी नूरजहाँका नाम भी जादूसे भरा हुआ है। उसका नाम लेते ही एक सुन्दरीकी जवानीसे भरी मोहिनी मूर्ति मानों आँखोंके आगे आ जाती है और काव्य तथा इतिहासमें बुढ़ापेके तुषार-पातकी बात रहनेपर भी पाठकोंकी कल्पनामें सदा स्थिर जवानीवाली एक कामिनीका चित्र प्रकट हो उठता है। कितने ही काव्यों और कितने ही इतिहासोंमें कितनी ही मोहिनी महिलाओंका वर्णन है; किन्तु उन सबकी नायिकाओंके भाग्यमें चिरयौवनका लाभ नहीं बँटा है। इसका कारण यही है कि सारी ही नायिकाओंकी स्मृति निरवच्छिन्न यौवन-संभोगके प्रसंगके साथ जटित रहती है, उनके नामके साथ साथ युवावस्थाकी बात मनमें आ जाती है। विलासके पाप-मन्त्रसे अभिमंत्रित हड्डीको घुमाये बिना आत्मा उन नायिकाओंके ऐतिहासिक चित्रकी ओर ताकने नहीं देती, इसी कारण इस जादूकी सृष्टि हुई है। सीताके चरित्रमें पापका लेशमात्र चिह्न नहीं है, इसी कारण सीताका नाम लेनेसे रूप और अवस्थाके संसर्गसे रहित एक देवी-मूर्ति ही मानस-पटपर अंकित हो उठती है और उस मूर्तिके चारों ओर फैले हुए प्रकाशमें अनुभवसे परे एक अना-नुषिक भाव प्रतिफलित हो उठता है।

कवि द्विजेन्द्रलाल रायने जब अपने इस नाटककी भूमिकामें प्रतिज्ञा की है कि हम आदर्श-चरित्र नहीं गढ़ेंगे तब इतिहासप्रसिद्ध नूरजहाँका आख्यान अवश्य ही ऐसे नाटकके उद्युक्त सामग्री है। कविने इस मोहिनीके चरित्र-चित्रणमें कहींपर भी इतिहासका उल्लंघन नहीं किया। इतनी बड़ी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनामें वैसा करना अच्छा भी न होता। मनके माफिक परिवर्तन

---

\* द्विजेन्द्र बाबूके 'चन्द्रगुप्त' नाटकमें इस नायिकाका चरित्र पढ़िए।

करके काव्यका गढ़ना अपेक्षाकृत सहज काम है। प्रकृतिके द्वारा यथार्थमें जो कुछ हुआ है, उसके मर्मको समझकर, उसके भीतर छुपे हुए काव्यको लिखकर प्रकट करना ही कठिन है। जो सबसे छोटे-छोटे नित्य होनेवाले कार्य हैं, उनके भीतर ही कविताकी सामग्री रहती है; किन्तु, बड़े कवियोंके सिवा अन्य किसीको वह सामग्री नहीं सूझती। इसीसे साधारण नवीन कविगण संसारको पददलित करके एकदम आकाशकी ओर ताकते हुए बादल और बिजलीके वर्णनमें ही व्यस्त रहते हैं। बहुत हुआ तो पृथ्वीपरकी घासपर पड़ी हुई ओसकी बूँदोंका बखान कर डालते हैं।

इस नाटकके काव्य-कौशलके सम्बन्धमें कवि स्वयं ही एक बात लिख गये हैं कि इस दृश्य काव्यमें 'स्वगत' नहीं है। श्रव्य काव्यमें बहुत-सी बातें कहकर समझा दी जाती हैं, इसी कारण श्रव्य काव्यकी अपेक्षा दृश्य काव्यकी रचना कुछ कठिन है। उसपर अगर 'स्वगत' उक्तिके सहारेसे जो सहायता मिलती है, वह भी न रहे, तो फिर उत्तम कौशल (Art) की जरूरत बहुत अधिक हो जाती है। कविने उस कौशलको इस नाटकमें सम्पूर्ण रूपसे दिखाया है। यह बात इस नाटक-काव्यको पढ़े बिना समझी नहीं जा सकती। समालोचनामें अगर उसे दिखानेकी चेष्टा की जाय तो किसी एक बड़े दृश्यका उदाहरण देकर, अनेक उक्ति-प्रत्युक्तियोंका विश्लेषण कर, यह दिखानेकी आवश्यकता होगी कि जिन स्थानोंमें 'स्वगत' रह सकता था, वहाँ उसके न रहनेपर भी काव्यका मर्म दुर्बोध नहीं हुआ। इसी कारण इस विचारका भार मैं अपने विज्ञ पाठकोंपर छोड़ता हूँ।

प्रथम दृश्यमें नूरजहाँको (मेहरुजिसाको) हम देखते हैं कि वह स्वामी, कन्या और भतीजीके साथ सुखके स्वर्गमें समासीन है। गहरे विचारके साथ सोचे बिना यह नहीं समझ पड़ता कि उस समय मेहरुजिसाके मनमें किसी उत्तम अकांक्षाका बीज था, या पतिके सिवा अन्य पुरुषकी छाया उसके मनो-मुकुटमें प्रतिफलित हो रही थी। अद्वितीय कवि भवभूतिके उत्तर-रामचरित-के प्रथम अंकमें जो अपूर्व नाट्य-कौशल है, वही यहाँ भी देखा जाता है, इस कौशलको समझे बिना इस नाटकका पढ़ना ही वृथा है। इसी कारण मैं

अपने वक्तव्यको और भी साफ करके लिखता हूँ ।

उत्तर-रामचरित पढ़ते समय पहले यह खयाल होता है कि राम-चन्द्र इतने प्रगल्भ वाक्योंसे सीताके आगे ही सीताकी महिमाका वर्णन क्यों कर रहे हैं ? यथार्थ प्रेमिक तो ऐसा कभी नहीं करता । गुप्तचरने आकर बादको जो कुछ रामचन्द्रसे कहा उसे वे बहुत पहलेहीसे जानते थे, यह बात हम गुप्तचरके नियोगको देखकर ही समझ जाते हैं । राम-चन्द्रने अच्छी तरह समझ लिया था कि प्रजा-रंजनके लिए, आज हो-या कल हो, उन्हें अपने 'हृदयं द्वितीयं' को छोड़ देना पड़ेगा । उनका हृदय विषाद-विषकी ज्वालाओंसे जल रहा था, इसीसे जनकके जानेके बाद उन्होंने अन्तःपुरको नहीं छोड़ा; इसीसे वे बातचीत करते समय उच्छ्वास-पूर्ण भाषामें सीताको सिर-आँखोंपर रखनेकी बात कहकर सीताको लज्जित कर रहे थे ।

नूरजहाँ अपने मनमें दुःस्वप्न देख रही थी, इसीसे वह सोच रही थी कि इतना सुख असह्य होगा । इसीसे वह बारंवार अपने पारिवारिक सुखका उल्लेख करके इस तरह उनकी आलोचना कर रही थी । इसीसे वह बच्चोंके सौंदर्यकी सुनहली किरणोंमें अपनेको डुबाये रखना चाहती थी । जो कोई सौंदर्यके भीतर रहता है, सुखके भीतर रहता है, वह कभी इस प्रकार प्रत्यक्ष भावसे सौन्दर्य और सुखको नहीं पाता । आगरेका नाम सुनकर नूर-जहाँका चौंक पड़ना अगर इस दृश्यमें न रहता, तो भी कुछ हानि न थी । परन्तु कविने उसे दिखाकर नूरजहाँके मनके भावको विशेष रूपसे स्पष्ट कर दिया है ।

मेहरुनिसाका पति शेरखॉ सरल-स्वभाव, उदार-प्रकृति, साहसी, वीर और धर्मसीरु पुरुष है । मेहरुनिसा उसी देवताको प्रसन्न करनेकी साधनामें स्वप्न और द्वायासे शून्य समाधि प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रही थी । उस तर्पणसे देवता तृप्त हो रहे थे । किस छिद्रसे आकर शनैश्चर सिरपर सवार हो जाता है, सो कोई नहीं जानता,—इतने बड़े राजा श्रीवत्स भी नहीं जान सके थे । बालिका मेहरुनिसाने जहाँगीरके आगे सौन्दर्यके दंभ और जवानीके

नशेमें एक लीला-विलास ही तो किया था। वह एक साधारण घटनाके सिवाय और कुछ न था। किन्तु कविने इस नाटकमें यह दिखाया है कि हमारे जीवनकी लुप्त रङ्गभूमिमें जो छोटे-छोटे अभिनय हो जाया करते हैं, उनका विराट् पुरुषके विराट् नाट्य-मंचपर खेले जा रहे महानाटकके हरएक अंक और हरएक दृश्यसे सम्बन्ध है। चाहे खयालकी धारा हो और चाहे वर्णकी धारा हो, वह केवल हँसाकर,—प्रकृतिके सौंदर्यको बढ़ाकर ही नहीं चली जाती; उसके कारण कभी कभी हृदयमें दारुण अग्नि भी भड़क उठती है। कहावत है कि शनिकी दृष्टि सर्वनाश किये बिना नहीं छोड़ती। लालसा और उच्च आकांक्षाकी आगसे पतंग बहुत दूरपर था; परन्तु दोनहारकी आँधी उसे आगरे लड़ा ले गई।

शेरखोंके सान वीरकी पत्नीके मनमें पापकी छाया छिपी है, उस बातको किसी तरह किसीपर भी प्रकट करना मेहरुजिसाके लिए असम्भव था। अत्यन्त विश्वासपात्र सखीके सामने भी ऐसी कलङ्ककी बातको प्रकट कर देना स्वाभाविक नहीं है। तो भी मेहरुजिसाने आगरेमें आकर एक सखीको बुलाकर और उससे सब बात खुलासा कहकर सद्बुद्धिका उपदेश चाहा। इस क्षुद्र दृश्यके कौशलमय वर्णनमें कविने समझा दिया कि सुन्दरी मेहरुजिसाके हृदयके भीतर ऐसी हलचल मची हुई थी कि वह किसी तरह आत्म-रक्षा नहीं कर पाती थी। इसी आशासे मेहरुजिसाने अपनी सखीसे जीका हाल खोलकर कह दिया कि पापकी छाया और दुःस्वप्नकी बात एक बार कह डालनेसे लज्जाके प्रभावसे शायद क्षीण हो जाय,—भूल जाय। पानीके भँवरमें पड़ा हुआ आदमी जैसे तिनकेका सहारा पाकर प्राण-रक्षा करना चाहता है, वैसे ही मेहरुजिसाका एक विश्वासपात्र सखीसे सब हाल कहकर उपदेश माँगना है। चतुर्थ दृश्य पढ़कर देखो, उसकी किसी बातमें कुछ जोर नहीं है; सखीके उपदेशमें भी कुछ विशेषता नहीं है, मेहरुजिसाकी प्रतिज्ञामें भी तेजी नहीं है। किन्तु गम्भीर भावसे पढ़ते ही समझमें आ जाता है कि नूरजहाँ बाहरसे चाहे जितनी स्थिरता दिखावे, मगर उसके मनमें भारी हलचल मची हुई है। बहेलियेके मन्त्रसे चञ्चल हुई चिड़िया एक बार

प्राणप्रणसे पंख फलाकर अपने छोटेसे धोंसलकी ओर चली है। चुपचाप थोड़ेसे शब्दोंमें इस प्रकार हृदयका चित्र अंकित कर देना साधारण क्षण्णताकी बात नहीं है।

शेरख़ाने जब समझ लिया कि उसका सुख चला गया तब वह मृत्युको बुलानेके लिए अग्रसर हुआ। प्रथम अंकके आठवें दृश्यमें मर्मस्थलको चोट पहुँचानेवाली इस घटनाका वर्णन है। जिन बातोंको कहकर शेरख़ाने अपनी प्यारी स्त्रीसे बिदा हुआ, उन्हें यदि कविवर द्विजेन्द्रलाल गाय स्वतन्त्र कविताके रूपमें लिखते, तो वे अपनी मातृभाषाके इस श्रेणीकी कविताके भांडारमें एक अमूल्य रत्न छोड़ जाते। भाग्यकी जलाई हुई आगके प्रचण्ड प्रकाशमें प्रकाशित और मर्मवेदनाकी करुणामें सने हुए उस सरस सुकोमल प्रीतिके हताश गीतको मैंने अनेक बार पढ़ा है। उपमाके द्वारा भाव प्रकट करनेमें, प्रीतिकी मधुरतामें और धीरोदात्त भावकी चंचलताहीन कातरतामें वह कविका किया हुआ वर्णन बहुत ही उत्तम हुआ है। शेरख़ाने कहता है, “मैं मनुष्य हूँ,— दुर्बल मनुष्य-मात्र हूँ। और वह मेरी शुरू जवानी थी, जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी खूब हरी-भरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियों जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त-जैसे जान पड़ते हैं; जब कोकिलाका गान एक स्मृतिके समान जान पड़ता है, मलय-पवन एक सुख-स्वप्न-सा समझ पड़ता है, जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन सजल बिजलीकी चमक और आर्लिगन आत्माका प्रलय जान पड़ता है। उसी चढ़ती जवानीमें मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी थी।”

इसके बाद जब शेरख़ाने मर गया तब भी नूरजहाँका हृदय उसका (=छुदका) विरोधी था, क्योंकि, हम लैलाके मुँहसे सुन पाते हैं कि मेहर पालतू चिड़ियाकी तरह स्वयं ही बादशाही अन्तःपुरमें आकर फँस गई। लैलाके सन्देह करनेका कारण था; नहीं तो वह हैम्लेटकी तरह उस अभागिनीके मनमें पिताकी यादको बराबर जमाये रखनेकी कोशिश क्यों करती रहती? किन्तु जब नूरजहाँ अपने पिता और भाईकी सुख-सम्पत्तिसम्बन्धी बात सुनकर भी जहाँगीरसे ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई, किन्तु अन्त-

को बदला लेनेका मौका पानेकी बातके नवीन प्रकाशको पाकर उत्साहित हो उठी, तब क्या कोई पाठक बालिका लैलाके सन्देह या अनुमानको झूठ समझ सकता है ? कभी नहीं । इस बातको विस्तृत भावसे आगे कहता हूँ ।

नूरजहाँने कहा अवश्य था कि मैं अपने हृदयकी शैतानी वृत्तिके प्रभाव-को प्रायः दमन कर चुकी थी । किन्तु इस बातका सहज अर्थ ग्रहण करनेसे बदला चुकानेके लिए उसमें विशेष उत्साहका भाव नहीं समझ पड़ता । शेर-खाँकी स्त्री भी तो स्त्री ही है । अपने पैरोंके नीचे पड़े हुए भारतके राज्यकी बातको सोचना उसके लिए कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है । रंग-ढंगसे इस बातको समझकर लैला भी नाराज हो सकती है और शेरखाँके समान देवताका याद करके ब्याहके लिए राजी नूरजहाँ भी उस भावको शैतानी प्रवृत्ति कहकर अपने मनकी गलानिको प्रकट कर सकती है । लेकिन इसके यथार्थ सिद्धांतका अनुसन्धान मनुष्य-चरित्रकी जटिलतामें करना चाहिए । केवल बदला चुकानेके लिए ही नूरजहाँने ब्याह नहीं किया । मुखसे वह चाहे जो कहे, मगर असल बात और ही थी । जब हम मनको भुलावा देकर कोई काम करते हैं तब छोटेसे किसी बहानेको ही बड़ा बनाकर दिखानेकी चेष्टा करते हैं । जहाँगीरके सम्बन्धमें एक दूसरी बात कहकर मैं फिर इसी बातको कहूँगा ।

रेवा सुन्दरी, बुद्धिमती, पुरायमयी, पति-भक्तिमें पूरी और पतिव्रता थी । स्त्रीके इतने गुणोंके बीच, उसके प्रतिदिनके गृहस्थीके प्रेमकी आड़में, प्रेमके पूर्वानुरागकी मधुरतासे परिपूर्ण चटकीले प्रेमके अभावको लख लेना किसी भी पतिके लिए सहज नहीं है । किन्तु जिसका चित्त पहलेहीसे लालसापूर्ण है, उसके निकट ये सब गुण नमकसे खाली खूबसूरतीके समान हैं । शुरू जवानीकी नई दीप्तिमें नेत्रोंकी जो विलासलीला घूँघटके सहसा खुल जानसे जहाँगीरने देख ली थी, उसे वे कभी नहीं भूल सके । भोगकी तीव्र लालसामें पुरायमयी-पत्नीका संयत प्रेम कभी मधुर नहीं मालूम पड़ सकता । इसी कारण ऐसी अवस्थामें अनेक लोग हताश होकर शराब पीने लगते हैं । मैं सम्राट हूँ, मेरी क्षमता असीम है, मैं क्या अपने वाञ्छित पदार्थके उपभोगसे वंचित

रह सकता हूँ ? इस भावने भी जहाँगीरके हृदयमें हलचल डाल दी थी । इससे उन्होंने छलसे, बलसे और कौशलसे,—जिस तरह बन पड़ा, अमानुषिक नर-हत्या तक कराकर, नूरजहाँको प्राप्त किया । लालसाकी प्रचण्ड उत्तेजनामें, भोगकी गहरी साधनामें पाप और पुण्यको तुच्छ समझकर जो कुछ पाया जाता है, मनुष्य सर्वत्र उसका ही हो जाया करता है । इसीसे बुद्धिमान जहाँगीरने भी जान-बूझकर नूरजहाँकी गुलामीमें अपने और देशके मंगलको मिटा दिया । इसी स्वाभाविकताके कारण पाठकगण पहले जहाँगीरके भयानक पापाचरणपर क्रुद्ध होकर भी फिर उन्हें असहाय देखकर और उनका पतन देखकर दुःखित होते हैं । लेकिन नूरजहाँके लिए ? इसका उत्तर आगे दिया जाता है ।

नूरजहाँकी शैतानी क्या केवल उसकी गौरव-लालसा ही है ? और क्या केवल बदला चुकानेकी सुविधा पानेके लिए ही वह ब्याह करनेको राजी हो गई थी ? पुरुषकी मृत्यु कहाँ है, सो प्रायः स्त्रियाँ समझ सकती हैं । बुद्धिमती नूरजहाँने उद्भ्रान्त जहाँगीरकी अवस्था देखकर स्पष्ट ही समझ लिया था कि सम्राट्की क्षमता उसके पैरोंके नीचे है और वह चाहे तो अपनी उँगलीके इशारेपर राष्ट्र-नीतिको चला सकती है । नूरजहाँ क्या केवल इसी क्षमताकी नृणासे उत्तेजित हो रही थी ? उसके मूलमें क्या भोगकी लालमा नहीं थी ? ललाका अनुमान क्या मिथ्या था ? कविने अत्यन्त चतुरताके साथ इन सब प्रश्नोंका उत्तर दे दिया है । मगर हाँ, उसे समझनेके लिए कुछ विचार करनेकी जरूरत जरूर है ।

कविने शेरखोंको देव-चरित्र कल्पित किया है । लेकिन नूरजहाँ शेरखों-पर केवल भक्ति ही करती थी; उसे पूरे हृदयसे, जी-जानसे, चाहती नहीं थी, इस बातको एक जगह खुद नूरजहाँने ही कह डाला है । इसमें आश्चर्यकी कुछ बात नहीं है । अंगनरेश कुछ अयोग्य न था, मगर स्वयंवरमें राजकुमारी इन्दुमतीने उसे स्वीकार नहीं किया । इसीसे कालिदास कहते हैं 'नासी न काम्यो, न च वेद सम्यक्, द्रष्टुं न सा भिन्नार्चिर्हि लोकः ।' अर्थात् अंगराज क्या कम कमनीय था, और इन्दुमती भी पुरुषको परस्वनेमें क्या कम प्रवीण थी ? फिर भी जो इन्दुमतीने उसे ग्रहण नहीं किया, इसका कारण यही है कि संसारमें लोगोंकी रुचि भिन्न भिन्न हुआ करती है ।

नूरजहाँ के हृदयमें अगर लालसाकी हवा न चलती, तो केवल जवानीके गर्वसे या केवल किसी तरहके खयालमें डूबे रहनेसे ही उसके मुँहपरसे कपड़ा न हट जाता। नूरजहाँ ऐसी-वैसी लड़कियोंकी तरह चंचल भी नहीं थी, उसके हृदयमें आत्म-सम्मानका ज्ञान यथेष्ट था; वह बुद्धिमती भी थी, नहीं तो इतने बड़े राज्यका शासन वह न कर सकती। वह बुद्धिमती थी, इसीसे उसने अपने देवताको लेकर गृहस्थीमें सुखी होनेकी प्राणपणसे चेष्टा की थी। उसने आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए अपने हृदयसे यथेष्ट-मुक्त किया, लेकिन घटना-चक्र उसके अनुरूप नहीं हुआ। उसने देखा कि वह लगातार होनीके फेरसे मानों एक फेंदेमें फँसती जा रही है। एक ओर आत्म-सम्मानकी रक्षाका खयाल था, दूसरी ओर भोग-लालसाकी छिपी हुई आग और गौरव-कामनाकी हवा थी। ऐसी जगह किसकी हार और किसकी जीत होना स्वाभाविक है, सो किसीको बताना नहीं पड़ेगा। जो स्वाभाविक था वही हुआ। स्वाभाविकता दिखाना ही काव्यका उद्देश्य कहा जाता है। प्रबल आत्म-सम्मानके खयालने और लैलाके तिरस्कारने चार साल तक नूरजहाँकी रक्षा की।

साहित्यरथी बंकिमचंद्रकी भाषामें मैं कहता हूँ कि पापके मार्गमें बड़ी रपटन है, — गिरनेवालेकी गति हम परपर बढ़ती जाती है। नूरजहाँ पूरी क्षमता हाथमें लेनेके लिए प्रतिदिन जो कुछ कर रही थी उसकी भयानकता-का अनुमान करके एक दिन वह स्वयं ही कौप उठी। यह बात नहीं है कि नूरजहाँने लैलाके एक दिन गुरुसेमें आकर कहनेसे पाप-कार्य करना शुरू किया। बात यह है कि अपने किये पापको 'प्रतिहिंसा' के नामसे ढँकनेके लिए,—अर्थात् अपने ही मनको भुलावा देनेके लिए, पुण्यमयी लैलाकी बातको उसने अपने लिए नज़ीर बनाकर खड़ा करना चाहा था। छिपा हुआ अत्यंत क्षुद्र निस्तेज पाप भी यदि एक बार प्रश्रय पा जाता है, तो वह सारे पुण्यको प्रस लेता है, इसीसे नूरजहाँ ऐसे बड़े चक्रमें फँस गई।

समाज-तत्त्वके एक अति सूक्ष्म और शिक्षाप्रद सत्यकी बात कहता हूँ। कोई भी जाति ( वह चाहे जितनी उन्नत हो ) अन्य जातिको ( वह चाहे जितनी हीन और दुर्बल हो ) हराकर उसपर पूर्णरूपसे जय प्राप्त तो क्या करती है, अन्तको स्वयं ही पिछड़ जाती है। इस देशमें आर्यों और अना-र्योंके भिन्नके बादसे हमारी जो दुर्दशा हुई है उसके मूलमें भी यही सत्य

देख पड़ना है। समाज-तत्त्वके ज्ञाता स्टुअर्ट ग्रेव्सीकी भाषामें यह बात इस तरह कही गई है :

“In the conflict of races, the conquerors are often the conquered, becoming merged in and modified by those whom they physically subdue. This is a truth of great sociological importance.”

इस फलको न होने देनेके लिए इस मनषके विजेता लोग बहुत क्रुद्ध चेष्टा कर रहे हैं; लेकिन, भाग्य-चक्र मनुष्यकी चालाकीको हराकर अपनी इच्छाके अनुसार ही घूमा जाता है। विस्तृत समाजके गमनमें जो गमन है, वही हर मनुष्यके इतिहासके सम्बंधमें भी सत्य है, क्योंकि मनुष्योंका गमन ही तो समाज है।

इन नाटकोंमें यह बात नहीं है कि नूरजहाँ प्रतिदिन अपनी बुद्धिमें एक नीतिजाल ( यहाँपर प्राचीन मतानुसार पालिसी Policy के अर्थमें ही ‘नीति’ शब्दका प्रयोग किया गया है ) रचकर प्रतिहिंसाके लिए उसे दायवी और समेटती थी। असल बात भी यह नहीं है, क्योंकि, अपने मुखकी मात्रा बढ़ानेमें और अपनी क्षमताको अखण्ड बनानेमें उसने जितना पाप किया, एक दिन उसे सोचकर वह आपही चौंक उठी थी। उसके उद्भ्रान्त पति जहाँगीरने जिस दिन मदिरा और आनन्दसे विह्वल होकर पूछा कि ‘नूरजहाँ, तुम देवी हो या मानवी ?’ उस दिन नूरजहाँने भराई आवाजमें कहा था, ‘मैं दानवी हूँ।’ इसी तरहकी कुछ बातें नूरजहाँके चरित्रके सीमाहीन सागरमें छाटे-छोटे टापुओंकी तरह दिखाई देकर उस सागरके विस्तारको दिखा देती हैं। नहीं तो उसके वार-वार-हीन फैलावका अनुमान नहीं किया जा सकता।

नूरजहाँ अगर बदला चुकानेके लिए सब काम कर रही थी, और गौरवके लिए ही लालायित थी, तो वह महाबतखाँसे परास्त होकर रो-धोकर अपने प्राण बचानेकी चेष्टा न करती। जो लोग क्षमताके लिए पागल हो रहे हैं, प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित हो रहे हैं, वे अत्यन्त साधारण द्वारमें भी आत्म-हत्या तक कर डालते हैं। कवि द्विजेन्द्रलाल अगर इस अवस्थामें एक बार नूरजहाँको नहीं रुलाते, तो हम लोग इस विषम जटिल चरित्रको अच्छी तरह कभी नहीं समझ सकते।

नूरजहाँके हृदयमें अगर लालसाकी हवा न चलती, तो केवल जवानीके गर्वसे या केवल किसी तरहके खयालमें डूबे रहनेसे ही उसके मुँहपरसे कपड़ा न हट जाता। नूरजहाँ ऐसी-वैसी लड़कियोंकी तरह चंचल भी नहीं थी, उसके हृदयमें आत्म सम्मानका ज्ञान यथेष्ट था; वह बुद्धिमती भी थी, नहीं तो इतने बड़े राज्यका शासन वह न कर सकती। वह बुद्धिमती थी, इसीसे उसने अपने देवताको लेकर गृहस्थीमें सुखी होनेकी प्राणपणसे चेष्टा की थी। उसने आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए अपने हृदयसे यथेष्ट-युद्ध किया, लेकिन घटना-चक्र उसके अनुरूप नहीं हुआ। उसने देखा कि वह लगातार होनीके फेरसे मानों एक फेंदेमें फँसती जा रही है। एक ओर आत्म-सम्मानकी रक्षाका खयाल था, दूसरी ओर भोग-लालसाकी छिपी हुई आग और गौरव-कामनाकी हवा थी। ऐसी जगह किसकी हार और किसकी जीत होना स्वाभाविक है, सो किसीको बताना नहीं पड़ेगा। जा स्वाभाविक था वही हुआ। स्वाभाविकता दिखाना ही काव्यका उद्देश्य कहा जाता है। प्रबल आत्म-सम्मानके खयालने और लैलाके तिरस्कारने चार साल तक नूरजहाँकी रक्षा की।

साहित्यरथी बंकिमचंद्रकी भाषामें मैं कहता हूँ कि पापके मार्गमें बड़ी रपटन है, — गिरनेवालेकी गति हर पगपर बदती जाती है। नूरजहाँ पूर्ण क्षमता हाथमें लेनेके लिए प्रतिदिन जो कुछ कर रही थी उसकी भयानकताका अनुमान करके एक दिन वह स्वयं ही काँप उठी। यह बात नहीं है कि नूरजहाँने लैलाके एक दिन गुरुसेमें आकर कहनेसे पाप-कार्य करना शुरू किया। बात यह है कि अपने किये पापको 'प्रतिहिंसा' के नामसे ढँकनेके लिए,—अर्थात् अपने ही मनको भुलावा देनेके लिए, पुरयमयी लैलाकी बातको उसने अपने लिए नज़ीर बनाकर खड़ा करना चाहा था। छिपा हुआ अत्यंत क्षुद्र निस्तेज पाप भी यदि एक बार प्रभय पा जाता है, तो वह सारे पुण्यको प्रस छेता है, इसीसे नूरजहाँ ऐसे बड़े चक्रमें फँस गई।

समाज-तत्त्वके एक अति सूक्ष्म और शिक्षाप्रद सत्यकी बात कहता हूँ। कोई भी जाति ( वह चाहे जितनी उन्नत हो ) अन्य जातिको ( वह चाहे जितनी हीन और दुर्बल हो ) हराकर उसपर पूर्णरूपसे जय प्राप्त तो क्या करती है, अन्तको स्वयं ही पिछड़ जाती है। इस देशमें आर्यों और अना-र्योंके भिन्ननेके बादसे हमारी जो दुर्दशा हुई है उसके मूलमें भी यही सत्य

देख पड़ना है। समाज-तत्त्वके ज्ञाता स्टुअर्ट ग्लेसीकी भाषामें यह बात इस तरह कही गई है :

"In the conflict of races, the conquerors are often the conquered, becoming merged in and modified by those whom they physically subdue. This is a truth of great sociological importance."

इस फलको न होने देनेके लिए इस समयके विजेता लोग बहुत कुछ चेष्टा कर रहे हैं; लेकिन, भाग्य-चक्र मनुष्यकी चालाकीको हराता अपनी इच्छाके अनुसार ही घूम जाता है। विस्तृत समाजके सम्बंधमें जो सत्य है, वही हर मनुष्यके इतिहासके सम्बंधमें भी सत्य है, क्योंकि मनुष्योंका समूह ही तो समाज है।

इस नाटकमें यह बात नहीं है कि नूरजहाँ प्रतिदिन अपनी बुद्धिसे एक नीतिजाल ( यहाँपर प्राचीन मतानुसार पालिसी Policy के अर्थमें ही 'नीति' शब्दका प्रयोग किया गया है ) रचकर प्रतिहिंसाके लिए उसे डालती और समेटती थी। असल बात भी यह नहीं है, क्योंकि, अपने मुखकी भाँचा बढ़ानेमें और अपनी क्षमताको अखण्ड बनानेमें उसने जितना पाप किया, एक दिन उसे सोचकर वह आपही चौंक उठी थी। उसके उद्भ्रान्त पति जहाँगीर-ने जिस दिन मदिरा और आनन्दसे विहल होकर पूछा कि 'नूरजहाँ, तुम देवी हो या मानवी ?' उस दिन नूरजहाँने भरीई आवाजमें कहा था, 'मैं दानवी हूँ।' इसी तरहकी कुछ बातें नूरजहाँके चरित्रके सीमाहीन सागरमें छोटे-छोटे टापुओंकी तरह दिखाई देकर उस सागरके विस्तारको दिखा देती हैं। नहीं तो उसके वार-वार-हीन फैलावका अनुमान नहीं किया जा सकता।

नूरजहाँ अगर बदला चुकानेके लिए सब काम कर रही थी, और गौरवके लिए ही लालायित थी, तो वह महाशतखोंसे परास्त होकर रो-धोकर अपने प्राण बचानेकी चेष्टा न करती। जो लोग क्षमताके लिए पागल हो रहे हैं, प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित हो रहे हैं, वे अत्यन्त साधारण हारमें भी आत्म-हत्या तक कर डालते हैं। कवि द्विजेन्द्रलाल अगर इस अवस्थामें एक बार नूरजहाँको नहीं रुलाते, तो हम लोग इस विषम जटिल चरित्रको अच्छी तरह कमी नहीं समझ सकते।

नूरजहाँ सुन्दरी थी, नूरजहाँ मोहनी थी। उसके रूपके मोहके फेरमें पड़कर एक समय सारा भारत-साम्राज्य चकरा रहा था। जिस दिन होनीकी निर्दय फूँकसे वह जादू उड़ गया उस दिन अपने ही उठाये हुए चक्करमें पड़कर नूरजहाँने क्षमताके तृण-मात्रको पकड़कर खड़े होना चाहा, लेकिन वह खड़ी नहीं हो सकी,—उसी दिन पागल हो गई। तीव्र लालसाका यही अन्तिम फल है। उसका ऐसा ही परिणाम होता है। यह बात मैंने माइसलेके मस्तिष्क-रोगसे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थमें भी लिखी देखी है। इसी स्थानपर हम अभिमानिनी लैलाका नया रूप देख पाते हैं। मुगल-परिवारमें रहकर लैलाने जो अभिज्ञता प्राप्त की थी, उसने उससे समझ लिया था कि सम्पत्ति-से मिलनेवाले सुखका अर्थ ही अपवित्रता है। इसीसे वह उस दुर्दिनमें,—उस दुःखके दिनमें अपने अन्ध असहाय पति और सम्पत्तिहीना दुखिया माता-को छातीसे लगाकर सुखी हो सकी।

‘नूरजहाँ’ की समालोचनामें मैंने केवल नूरजहाँकी ही बात कही है। वही मेरा वक्तव्य भी था, क्योंकि, अन्य चरित्रोंकी चर्चा नूरजहाँके चरित्रकी पारिवारिक मात्र है।

प्रत्येक अंककी टीका-टिप्पणी किये बिना हरएकका हरएक अंकसे जो संयोग है, सो नहीं समझाया जा सकता। किन्तु मेरी समझमें मैंने जितना कहा है उसीसे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि कविने नूरजहाँके चित्रमें जो चरित्रकी जटिलता अंकित की है, उसकी प्रत्येक रेखा, वर्णकी विचित्रता और भावके उद्बोधनके द्वारा सजीव भावसे प्रस्फुटित हो रही है। कविने इस नाटकमें मनुष्य-चरित्र-विश्लेषणकी जो असाधारण क्षमता दिखाई है वह उनके अपूर्व रचना-कौशलसे मिलकर सोनेमें सोहागा हो गई है।

—श्रीविजयचन्द्र मजूमदार

\*मुगलोंके अन्तःपुरकी नाब लालसाका बात मैंने बारम्बार कही है, लेकिन वहकी विद्या-चर्चाकी बात नहीं कही। मुगल-परिवारोंमें मन्थता और विद्या-चर्चा पूर्णरूपसे थी। दाराने उपनिषदोंका अनुवाद किया था। ग्रीक-विद्याके पंडित भी मुगलोंके दरबारमें उपस्थित रहतेथे। इसी कारण इस ग्रन्थमें शाहजहाँके मुखमें अफलातून या प्लेटोके ग्रन्थकी बातोंका कहलाना अस्वाभाविक नहीं है।

‘नूरजहाँ’ मनस्त्वकी सुगंभीर आलोचनासे परिपूर्ण है। मानव-चरित्रके सूक्ष्म निपुण विश्लेषणने नूरजहाँके चरित्रको अच्छी तरह प्रस्फुटित कर दिया है। बंगालके और किसी भी नाटकमें इस प्रकारका चरित्र-विकास नहीं देखा गया।

—सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय

“द्विजेन्द्र-जैसे सरल प्रकृतिके लोग जटिल दुर्बोध चरित्र अंकित ही नहीं कर सकते। द्विजेन्द्र बाबू अपने नूरजहाँ-चरित्रको जो जटिल और दुर्बोध कहते हैं, सो यह उनका भ्रम है। नूरजहाँ-चरित्र दुर्बोध नहीं हुआ,—वह सर्वत्र ही सुस्पष्ट है। अर्थात्, विजय बाबूने जो नूरजहाँ-चरित्रकी जटिलताका विश्लेषण किया है, उसे बहुत गहरा विचार करके आविष्कृत नहीं करना पड़ता। नूरजहाँके अपने मुँहसे कहने पर भी,—आत्मप्रतारणा करनेपर भी, यह बात सहज ही समझमें आ जाती है कि उसने बदला लेनेके लिए सम्राट्-से विवाह नहीं किया, उसके मनमें क्षमता और गौरवकी आकांक्षाके साथ-साथ भोग-लालसा ही गुप्त रूपसे बलवती थी। द्विजेन्द्रकी सरलता और कलाकुशलताने इस बातको समझनेका मार्ग सर्वत्र ही सुगम कर दिया है।”

—स्वर्गीय कविवर वरदाचरण मित्र आई. सी. एस.

“...कविका यह कथन सर्वथा भित्तिहीन न होनेपर भी कि ‘जन साधारणको, विशेषकर किसी-किसी समालोचकको, यह बहुत ही दुर्बोध प्रतीत होगी, नूरजहाँका चरित्र रसग्राही पाठकोंके निकट उपभोग्य समझा गया है, उसका खूब आदर हुआ है और इस नाटककी रचना करके द्विजेन्द्रलाल नाट्य-शिल्पीके श्रेष्ठ आसनको पानेके योग्य समझे जाकर साहित्य-संसारमें अभिनन्दित हुए हैं।

“इस नाटकमें यद्यपि कविने किसी भी नीतिके प्रचारके उद्देश्यसे लेखनी धारण नहीं की है, तथापि स्वजाति और स्वदेशकी उन्नतिके मार्गमें जो सब विघ्न उनके हृदयमें व्यथा पहुँचाते थे, वे प्रसंगानुसार उनकी लेखनी द्वारा पात्र और पात्रियोंके मुखसे स्वतः ही प्रकाशित हो गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

**कणास**—जब देखता हूँ कि महावतखोंके समान धर्मात्मा कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचार-भेदके कारण हम अपना कहकर जातिके भीतर लेकर गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंका अधःपतन क्यों हुआ है। जहाँ जीवन है वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है और जहाँ मरण है वहाँ वह खुद ही सौ टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाता है।

**करण**—इस साम्राज्यपर हम हिन्दुओंका फिर अधिकार हो जायगा, तो भी हम उसे बनाये न रख सकेंगे। कारण, मैंने सोचकर देखा : है कि जबतक हमारी जातिके लोग मनुष्य न बन सकेंगे तबतक हिन्दु-साम्राज्य विकार-ग्रस्त मनुष्यका स्वप्न ही रहेगा।

पात्र-पात्रियोंके मुखसे कविने दो-चार सरल-सत्य और नीतिकी बातें भी इस ग्रन्थमें कहलाई हैं।

**खदीजा**—साम्राज्य ?—बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य इतना लाला-यित है। वह नहीं देखता कि प्रत्येक मनुष्यके ही भीतर एक सम्पत्ति अनादर-के साथ पड़ी हुई है।

**रेखा**—हम हिन्दू हैं। हमारी जातिने दूसरोंको बाँटनेके लिए ही जन्म लिया है। भला बतलाओ, यह भारतवर्ष भी क्या हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें नहीं दे दिया ? हमारी आशा यहाँ नहीं है मेहर, हमारी आशा और भरोसा ( ऊपरकी ओर देखकर ) वहाँ है।

भानसिंहकी भगिनी जहाँगीरकी हिन्दू महिषी रेखाका चरित्र द्विजेन्द्रलालकी अपूर्व सृष्टि है। सबसे पहले हम 'राणा प्रतापसिंह' नाटकमें रेखाका दर्शन करते हैं। उक्त नाटकके प्रथम अंकके पंचम दृश्यमें नाट्यकारकी अमर लेखनीकी कितनी ही रेखाओंसे रेखाका चित्र ऐसा सुन्दर और उज्ज्वल बन गया है कि वैसा चरित्र-विकासचाहे जिस सर्वोत्तम नाट्य-शिल्पीकी शलाघाके योग्य होकर अभिनन्दित हो सकता है। 'नूरजहाँ' नाटकमें रेखा-चरित्रका वह रेखा-चित्र चित्तहारी बर्णोंके संपातसे और भी उज्ज्वल भावसे विस्तृत हो उठा है। पहलेहीसे, विशेषकर द्वितीय अंकके पंचम दृश्यमें, हम रेखाके चरित्रका महिमा मय स्वातंत्र्य हृदयंगम करके विस्मित और विमुग्ध हो जाते हैं। नाटकमें सर्वत्र ही रेखा-चरित्रका वह गौरव और तेजोमय माधुर्य देदीप्यमान है।

—नवकृष्ण घोष

## भूमिका

मेरे लिखे हुए अन्य ऐतिहासिक नाटकोंसे नूरजहाँ नाटकमें कई विशेषतायें हैं । पहली विशेषता यह है कि मैंने इस नाटकमें देव-चरित्र अंकित करनेकी चेष्टा नहीं की किन्तु गुणदोषसमन्वित मनुष्य-चरित्र अंकित करनेका प्रयत्न किया है । दूसरी विशेषता यह है कि इस नाटकमें बाहरके युद्धकी अपेक्षा भीतरका युद्ध दिखलानेमें ही मैं अधिक प्रयत्नशील रहा हूँ । ऐसा नहीं है कि पहले मैंने इस प्रकारका प्रयत्न किया ही नहीं; नहीं, किया है । अइत्या, सूर्यमल्ल, शक्रसिंह, मेहरुन्निसा ( =अकबरकी कन्या ) और औरंग-जेब आदि पात्रोंके चरित्रोंमें यह अन्तर्युद्ध थोड़ा-बहुत अवश्य दिखलाया गया है; परन्तु नूरजहाँमें उसे दिखानेका जितना प्रयत्न किया है उतना पहले कभी नहीं किया । नूरजहाँके मनके ऊपरसे होकर प्रवृत्तियोंकी एकके बाद एक लहर चली जाती है, पाँच-छः प्रकारके भावोंने आकर उसपर क्रमसे अधिकार किया है । इसीसे उसका चरित्र विशेष जटिल और दुर्बोध हो गया है । तीसरी विशेषता यह है कि मैंने इस नाटकमें दूसरे किसी व्यक्तिके सामने किसीसे भी 'स्वगत' भाषण नहीं कराया है । एक आदमीका इस तरह जोरसे कहना कि सारे श्रोता तो सुन सकें, केवल उसके पास खड़े हुए नट-नटी नहीं सुनें, मुझे तो एक तरहसे हास्यकर ही मालूम होता है ।

—द्विजेन्द्रलाल राय

---

## नाटक-पात्र

### पुरुष

|                       |                  |     |                                  |
|-----------------------|------------------|-----|----------------------------------|
| जहाँगीर               | ...              | ... | भारत-सम्राट्                     |
| शेरख़ाँ               | ...              | ... | सम्राट्का उमरा                   |
| महाबतख़ाँ             | ...              | ... | सम्राट्का सेनापति                |
| आयश (=मिर्जा गयास)    | ...              | ... | सम्राट्का खजौंची, अन्तको मन्त्रि |
| आसफ                   | ...              | ... | आयशका पुत्र                      |
| ख़ुसरू (रेवाका पुत्र) | } जहाँगीरके बेटे |     |                                  |
| परवेज                 |                  |     |                                  |
| ख़ुर्रम (=शाहजहाँ)    |                  |     |                                  |
| शहरयार                |                  |     |                                  |
| विजयसिंह              | ...              | ... | मेवाड़का सेनापति                 |

### स्त्री

|                        |     |     |                                  |
|------------------------|-----|-----|----------------------------------|
| रेवा                   | ... | ... | भारत-सम्राज्ञी                   |
| मेहरुन्निसा (=नूरजहाँ) | ... | ... | शेरख़ाँकी स्त्री                 |
| लैला                   | ... | ... | नूरजहाँकी लड़की                  |
| ख़दीजा (=मुमताज)       | ... | ... | आसफ़की लड़की और शाहजहाँकी स्त्री |

# नूरजहाँ

## पहला अङ्क

### पहला दृश्य

[ स्थान—बर्दवानमें दामोदर नदके किनारे शेरखोंके घासे मिला हुआ बाग । बाग बड़े यत्नसे सुरक्षित है । केतकी, कदम्ब आदिके फूल चारों ओर खिले हुए हैं । सामने भादौके महीनेका बड़ा हुआ दामोदर प्रबल वेगसे बह रहा है । सूर्यदेव अभी अस्त नहीं हुए हैं । उनकी सुनहली किरणें नदकी छाती और दोनों किनारोंपर पड़ रही हैं । ]

शेरखों अपनी स्त्री नूरजहाँके साथ ( उस समय 'नूरजहाँ' नाम नहीं पड़ा था, नूरजहाँका नाम 'मेहरुजिसा' था ) उसी नदके किनारे एक चवूतरेपर बैठे हुए हैं । उनकी कन्या लैला और नूरजहाँके भाई आसफकी कन्या खदीजा एक गाना गा रही हैं । उसे शेरखों अपनी स्त्रीके साथ एकप्र मनसे सुन रहे हैं । ]

धनाश्री

सुन्दर सुरधाम-सदृश जोभा अधिकाई ।  
तुलना नहीं विश्व-बीच तेरी लखि पाई ॥ सुन्दर० ॥  
मोहत मन देश-रत्न, श्यामलता छाई ।  
अप्सरा बिहार करें मानों इत आई ॥ सुन्दर० ॥  
शीतल शत घने कुंज कुमुमित सुखदाई ।  
भाँति भाँति चहक रहीं चिड़ियों मनभाई ॥ सुन्दर० ॥  
भरदन भनकार उठी झर भर भरि लाई ।  
डोलत मृदु भलय-पवन त्रिविध अति सुहाई ॥ सुहाई० ॥  
उपवन-बन-बीच बसी सौरभ सरसाई ।  
गान-तान रूपरासि चार ओर छाई ॥ सुन्दर० ॥  
हा हा अमरावती अनाथ आज देखो ।

एहो हलभाषिनी अनन्द कौन लेखो ॥ सुन्दर० ॥

दुर्दशा भुलाय भले, बन्धन बिसराई ।

हँसो हँसो हँसो, चहै होय जग हँसाई ॥ सुन्दर० ॥

शेरखो—बहुत सुन्दर गीत है । जाओ, अब तुम दोनों जाकर खेलो ।

( दोनों बालिकायें चली जाती हैं । )

नूरजहाँ—यह कैसा सुन्दर देश है । इसके लंबे-चौड़े खेत, —जिनके ऊपरसे श्यामलताकी लहर लहराती जाती है; इसके नद-नदी,—जिनका अथाह जलराशि जैसे उनके भीतर समाती ही नहीं, इसके निकुंज-वन,—जिनमें छाया, सुगन्ध और संगीत जैसे परस्पर लिपटे हुए सो रहे हैं । सारा देश जैसे एक अलौकिक स्वर्गीय सुखका स्वप्न देख रहा है ।

शेर०—ईश्वरने यहाँ रहनेवालोंको ऐसा सुन्दर देश दिया है, मगर उसकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं दी ।

नूर०—ना, प्रियतम, मुझे जान पड़ता है, इनके इतने सुखको देव सह नहीं सका । शायद किसीके भी इतने सुखको देव नहीं सह सकता ।

शेर०—नहीं मेहर, इस देशका यह उपजाऊ सौन्दर्य ही इसके लिए काल हो गया । इस भूमिने बहुत अधिक लाइ-प्यारसे ही अपनी सन्तानोंका सर्वनाश कर डाला । लाइ-प्यार अच्छी चीज है । वह वर्षाकी जल-धाराकी तरह पृथ्वीको हरा-भरा करता है । लेकिन बहुत अधिक लाइ-प्यार बेहद वर्षाकी तरह अपने कामको आप ही नष्ट कर देता है ।

नूर०—मुझे भी क्या तुम इसी तरह बहुत अधिक लाइ-प्यार करके नष्ट कर रहे हो ?

शेर०—नहीं मेहर, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मैं तुमको यथेष्ट प्यार नहीं कर पाता ।

नूर०—देखो प्रियतम, लैला और खदीजा इस नदके किनारे गलेमें हाथ डाले कैसे मजेसे टहल रही हैं, जैसे परियोंकी दो लड़कियाँ हों ।

शेर०—दोमंसे एक तो जहर ही है ।

नूर०—उनके पास ही वे गुलाबके फूल खिल रहे हैं । इन लड़कियोंके मुँहपर और उन गुलाबोंके ऊपर अस्त होते हुए सूर्यकी सुनहली किरणें पड़ रही हैं । कौन कह सकता है कि इन लड़कियोंके चेहरे सुन्दर हैं या गुलाबके फूल ?

शेर०—सच है प्यारी !

नूर०—इनके पीछे बढ़ा हुआ दामोदर नद दोनों किनारोंसे उमड़ता हुआ प्रचण्ड अस्थिर वेगसे बहा जा रहा है ! कैसा सुन्दर है !

शेर०—कैसे सुखी हैं हम लोग मेहर !

( नूरजहाँका हाथ अपने हाथमें ले लेता है । )

नूर०—( अविचलित अन्यमनस्क भावसे ) लेकिन हमारा इतना सुख शायद दैव देख न सकेगा ।

शेर०—क्यों न देख सकेगा मेहर ! हमने किसीका कुछ अपराध नहीं किया; किसीका कुछ लिया-दिया नहीं; हम केवल एक दूसरेको प्यार करके सुखी हैं । क्या इसी अपराधसे हमारे सुखको दैव न देख सकेगा ?

नूर०—स्वामी, इन बंगालियोंने क्या अपराध किया था ? ये लोग अपने ही सुखमें मगन थे । किन्तु, इनके सुखको दैव देख न सका । इतना सुख दैव देख ही नहीं सकता । दैव अगर कुछ नहीं भी करता है तो और लोग नहीं देख सकते । ईर्ष्या होती है, लोभ होता है, छीन लेनेकी इच्छा होती है ।

( इसी समय नूरजहाँके भाई आसफने पीछेसे आकर हँसते हुए कहा—)

आसफ—मगर मैं आप लोगोंका—

नूर०—( चौंककर ) कौन आसफ ?

शेर०—अरे हाँ, आसफ ही तो है !

( खड़े होकर आसफका हाथ पकड़ता है । )

आसफ—मैं कह रहा था ख़ाँ साहब, कि मैं आप लोगोंका कुछ छीन लेने नहीं आया हूँ, बल्कि कुछ देने आया हूँ ।

शेर०—क्या देने आये हो ?

आसफ—चटपट नहीं कह डालूँगा,—पहले—

नूर०—अब्बा कुशलसे हैं ?

आसफ—हाँ मेहर । सम्राट् जहाँगीर—

शेर०—सम्राट् जहाँगीर कौन ?

आसफ—क्यों ! सलीम । वे अकबरके मरनेके बाद 'जहाँगीर' नामसे सम्राट् हुए हैं । यह क्या तुमने नहीं सुना ?

नूर०—सम्राट् अकबरका स्वर्गवास हो गया ?

आसफ—तुमने नहीं सुना ?—आश्चर्य है ।

शेर०—सुननेके लिए छुट्टी ही नहीं मिली, हम अपने सुखमें इतने मगन हैं ।

आसफ—सचमुच नहीं सुना ?

शेर०—नहीं आसफ, और इससे हमारा आता-जाता भी क्या है ? अदरखका बेपारी जहाजकी खबरसे सरोकार नहीं रखता ।

आसफ—नहीं, इससे तुम्हारा बहुत कुछ आता-जाता है, यह मैं अभी दिखा दूँगा—

शेर०—अच्छा, भीतर चलो, अघेरा हो गया । चलो मेहर,—

नूर०—चलो, चलती हूँ ।

( आसफ और शेरखों घरके भीतर जाते हैं । )

आसफ०—( जाते-जाते ) खदीजा कहाँ है ?

शेर०—वह देखो, लैलाके गलेमें हाथ डाले घुम रही है ।

आसफ—मैं देखता हूँ, यहाँ मजेमें है ।

( दोनों जाते हैं । )

नूर०—सलीम सम्राट् हो गये ।—फिर यह बात क्यों मनमें आती है ?—नहीं, उस खयालको मैं मनमें न आने दूँगी ।—ना ना ना !—वह शुरू जवनीका एक खयाल-भर था । अब फिर वह चिन्ता क्यों है ! सलीम सम्राट् हैं, उससे मेरा क्या ! अदरखके बेपारीको जहाजकी खबरसे क्या सरोकार ?

[ इस समय शेरखों फिर प्रवेश करता है । ]

शेर०—मेहर, बहुत अच्छी खबर है ।

नूर०—क्या ?

शेर०—सम्राट् जहाँगीरने मुझे पाँच हजारका पद देकर आगरे बुला भेजा है ।

नूर०—सर्वनाश !

शेर०—यह क्या कहती हो ?—यह तो मेरे लिए बड़े सम्मानकी बात है ।

नूर०—जाओगे ?

शेर०—जाऊँगा क्यों नहीं ?

नूर०—मैं कहती हूँ, मत जाना ।—खबरदार !

शेर०—इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो ? यह तो बड़े आनन्दकी बात है ।

नूर०—मेरी बात सुनो,—कहती हूँ, मत जाओ,—सावधान !

( इतना कहकर तेजीसे चली जाती है । )

शेर०—आश्चर्य ! मेहर एक-एक इतनी उत्तेजित क्यों हो उठी ! कभी-कभी मेहर विचलित अवश्य हो उठती है; लेकिन, उसे इतना अधिक विचलित होते तो कभी नहीं देखा ।

—०—

## दूसरा दृश्य

स्थान—आगरेमें सम्राट् जहाँगीरके महलका अन्तःपुर

समय—तीसरा पहर

[ सम्राट् जहाँगीर और सम्राज्ञी रेवा दोनों खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं । रेवा श्वेत वस्त्र पहने है । उसने उसी समय स्नान किया है । उसके बाल खुले हुए हैं । हाथमें पूजाका पात्र है । ]

रेवा—सच कहो ।

जहाँ०—मैं सच कहता हूँ रेवा, शेरखों मेरे होशियार खजान्ची आयशका दामाद है और खुद एक खास आदमी है । उसे उसके योग्य पद देनेके लिए मैंने आगरे बुला मेजा है ।

रेवा—उसकी स्त्रीके ऊपर तुम्हारी तनिक भी दृष्टि नहीं है ? तनिक भी आसक्ति नहीं है ?—तनिक भी ?—सोचकर देखो ।

जहाँ०—मैं अपने हृदयके भीतर जहाँतक देख पाता हूँ, वहाँतक मुझे कोई गुद प्रयोजन नहीं देख पड़ता ।—तुम अपने मनमें नादक खिन्न होती हो ।

रेवा—देखो नाथ, मैं जो यह बात पूछती हूँ सो केवल इस कारण कि वह पराई स्त्री है । यदि उसके साथ तुम्हारा ब्याह हो सकता, तो मैं कुछ भी न कहती । किन्तु यह है एक आदमीके घरको बिगाड़नेकी,—एक परिवारके सुख और शान्तिको नष्ट करनेकी बात । यह महापाप है, इसीसे मैं चिन्तित हो रही हूँ । और इसकी मुझे, अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए ही चिन्ता है ।

जहाँ०—रेवा, जैसे तुम मेरे लिए सदा चिन्तित रहती हो, वैसे ही आग्रहके साथ अगर मुझे प्यार भी कर सकती !

रेवा—स्वामी, अब भी आप वही बात कह रहे हैं ?

जहाँ०—क्यों न कहूँ रेवा ? मैं तुम्हारे प्रेमका भिक्षुक जिस तरह पहले था उसी तरह आज भी हूँ । जीवनके उस रहस्यमय प्रभातमें मैंने तुम्हारे हृदय-तीर्थके लिए यात्रा की थी,—पास पहुँच भी गया था । किन्तु मैंने उसके भीतर प्रवेश करनेका अधिकार नहीं पाया ।

रेवा—प्रभो, जिसे कितनी ही बार कह चुकी हूँ, उसे ही फिर कहना होगा ।—हमारा यह विवाह क्या विवाह है ? नहीं, यह केवल एक राजनीतिक बन्धन है । यह हिन्दू और मुसलमानोंको मिलानेके लिए आपके पिताके एक जातीय उद्देश्यको सिद्ध करनेका उपाय मात्र है । इसमें सन्देह नहीं कि वह उद्देश्य महत् और उदार है ।—उसके लिए हम दोनों ही अपने सुखको विसर्जन करने बैठे हैं ।—राजाका कर्त्तव्य बड़ा ही कठोर होता है । उस कर्त्तव्यका पालन अगर न कर सकेंगे नाथ, तो यह साम्राज्य एक मेघके महलकी तरह आकाशमें लीन हो जायगा । नहीं प्रभो, हमारा यह जन्म दुःखमय है । मगर, उस दुःखको हम दूसरोंके लिए स्वीकार कर रहे हैं, इसलिए वह सुख है ।

जहाँ०—सबका साध्य एक-सा नहीं होता रेवा,—खर, ये सब पुरानी बातें जाने दो । कौन जाने, ये सब बातें आज फिर क्यों याद आ गईं !—वह देखो, शाहजादा खुसरू आ रहा है । देखो रेवा, खुसरूको मैं सावधान किये देता हूँ । तुम भी सावधान कर देना ।

[ सम्राटका बड़ा लश्कर खुसरू प्रवेश वरके प्रणाम करता है । ]

जहाँ०—खुसरू, जानते हो, मैंने तुमको क्यों बुला भेजा है ? मैंने तुम्हारे विरुद्ध एक बहुत ही बुरी बात सुनी है ।

खुसरू—कौन-सी बात अम्बा ?

जहाँ०—मैंने सुना है कि तुम मेरे विरुद्ध विद्रोह करनेकी सलाह कर रहे हो । यह बात क्या सच है ?

खुसरू—नहीं ।

जहाँ०—सच हो या झूठ, तुमसे एक बात कहे रखता हूँ खुसरू ! देखो, तुम मेरे बड़े लश्करके हो । तुम भारतके होनेवाले सम्राट् हो । कहीं अपनी गल्तीसे सब न गवाँ बैठना ।

खुसरू—नहीं अब्बा ।

जहाँ०—यद्यपि तुम मेरे बड़े लड़के हो, यद्यपि अपनी माँकी आँखोंके तारेहो, यद्यपि तुमको सब लोग प्यार करते हैं, तो भी तुम अगर मेरे विरुद्ध कुछ करोगे और अन्यायपर उतारू होगे, तो तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी माँके आँसू और मेरा स्नेह, ये सब तुमको उचित दण्डसे न बचा सकेंगे । याद रखो । ( प्रस्थान )

रेवा—( खुसरूके कंधेपर हाथ रखकर स्नेहके साथ कोमल स्वरसे ) खुसरू !

खुसरू—अम्मी !

रेवा—क्या यह सच है ?—चुप क्यों हो ? यह बात सच है ?

खुसरू—नहीं अम्मी, झूठ है ।

रेवा—नहीं बेटा, यह बात सच है । मैं तुम्हारी नीची निगाह, भरी हुई आवाज़ और अस्थिर भावसे समझती हूँ कि यह बात सच है । मुझसे क्यों झूठ बोलते हो बेटा ? मैं तुम्हारी माँ हूँ । मुझसे भी झूठ ? मैं पूछती हूँ, कहो यह बात सच है ?

खुसरू—( कुछ देर चुप रहकर सिर झुकाये हुए ) हाँ अम्मी, यह सच है ।

रेवा—सो तो मैं पहले ही समझ गई थी । खैर, यह काम कभी न करना । बोलो, चुप क्यों हो ? बोलो, नहीं करोगे ?

खुसरू—नहीं अम्मी, मैं यह नहीं कह सकूँगा । मैं उन लोगोंके निकट अंगीकार कर चुका हूँ ।

रेवा—तुम्हारा अंगीकार करना अन्याय है । उस अंगीकारको,—उस प्रतिज्ञाको तोड़ना ही धर्म है । कहो, कसम खाओ—

खुसरू—अम्मी—( सिर झुका लेता है )

रेवा—देखो खुसरू, मैं तुम्हारी माँ हूँ । माँसे बढ़कर भलाई सोचनेवाला संसारमें और कोई नहीं होता । उसका शरीर, स्नेह, मन,—उसकी सारी प्रवृत्तियाँ, उसका सारा जीवन सन्तानके लालन-पालन और भलाईके लिए ही विधाताने बनाया है । मैं दिन-रात तुम्हारे मंगलकी कामना किया करती हूँ । उसके बदलेमें तुमसे कुछ नहीं माँगती, केवल तुम्हारा कल्याण चाहती हूँ । मैं तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ कि यह काम कभी न करना । कहो, नहीं करोगे ?

खुसरू—नहीं करूँगा ।

रेवा—मेरे पैर छूकर कसम खाओ ।

खुसरू—( पैर छूकर ) कसम खाता हूँ, विद्रोह नहीं करूँगा ।

( खुसरूका प्रस्थान )

### तीसरा दृश्य

स्थान—मैदान

समय—जाड़ेकी ऋतुका प्रातःकाल

रेवा—माताको इतना सुख ! भगवन्, सन्तानके भलेकी कामना करके ही माताको इतना सुख होता है ।

[ पुरवासी लोग सवरे धूपमें बैठे हुए

बातें कर रहे हैं । ]

१ पुरवासी—तुमने शेरखोंको देखा है ?

२ पुर०—मैं पहलेसे ही उन्हें जानता हूँ । इधर आगरेमें जबसे आये हैं तबसे भी दो-तीन बार देख चुका हूँ ।

३ पुर०—( गर्वके साथ ) मेरी उनके साथ बहुत दिनोंकी जान पहचान है ।

१ पुर०—आगरेमें वे कब आये ?

२ पुर०—यही कोई एक महीनेके लगभग हुआ ।

१ पुर०—देखनेमें कैसे हैं ?

२ पुर०—देखनेमें वे एक छोटे-नोटे पहाड़की तरह हैं ।

३ पुर०—बाप रे ! कैसा डील-डौल है ? छाती जैसे एक मैदान है !

१ पुर०—नहीं तो खाली हाथ बाघके साथ कैसे लड़ते ?

२ पुर०—हथियार लेकर भी बाघके साथ कितने आदमी लड़ सकते हैं ?

४ पुर०—लेकिन मुझे जान पड़ता है, यह बात सच नहीं है ।

२ पुर०—यह क्या कहता है !

३ पुर०—कहता है, बाघके साथ लड़नेकी बात सच नहीं है ।

१ पुर०—सच नहीं है ?—क्यों ?

३ पुर०—हाँ, कदो तो भैया, क्यों ?—सच क्यों नहीं है ?

४ पुर०—क्यों ? अच्छा सुनो ।—शेरखाँ,—हाँ,—देखनेसे उसके बदनमें ताकतका होना जरूर जान पड़ता है—

२ पुर०—जान पड़ता है—

४ पुर०—अच्छा 'है' सही । 'जान पड़ता' निकाल डालो । लेकिन अगर वह खाली हाथ बाघसे लड़ा, तो शेरखाँ नहीं लड़ा, खुद रावण आवर लड़ा होगा । और या वह बाघ न होगा, कोई बनबिलाव होगा ।

१ पुर०—साथमें जो लोग गये थे, उन सबका तो यही कहना है कि शेरखाँ बाघके साथ लड़े थे ।

४ पुर०—हूँ,—तुम्हारे 'लोग' तो यों ही कह दिया करते हैं । सुनी बातपर विश्वास न करना चाहिए । अपनी आँखसे देखा है ? मैं कहता हूँ, नहीं लड़े ।

३ पुर०—हूँ, तुम्हारे यों कहनेसे ही हो गया कि शेरखाँ बाघसे नहीं लड़े ।

४ पुर०—मैं कहता हूँ, नहीं लड़े । लड़ना साबित करो ।

२ पुर०—यह आदमी तो बड़ा भगडालू जान पड़ता है ।

४ पुर०—प्रमाण क्या है ? सुनी बातका कुछ प्रमाण नहीं ।

( पाँचवें व्यक्तिने, जो जरा दूरपर बैठा हुआ घमा रहा था और सब बातें चुपचाप सुन रहा था, आगे बढ़कर कहा—)

५ पुर०—ठीक है, सुनी बात कोई बात नहीं है । अच्छा आओ तो, जरा मैं तुमसे जिरह करूँ ।

४ पुर०—अच्छा, करो जिरह ।

( इतना कहकर गर्वका भाव दिखाता हुआ उसके पास खड़ा होता है ।)

५ पुर०—तुम्हारा नाम ?

४ पुर०—कादिरबेग ।

५ पुर०—तुमने कैसे जाना ?

४ पुर०—मेरे बापने यह नाम रक्खा था ।

५ पुर०—रखते देखा था ? याद है ?

४ पुर०—नहीं । पर लोग मुझे इसी नामसे पुकारते हैं ।

५ पुर०—तो यह सुनी बात है ।—तुम्हारा नाम, मैं कहता हूँ, 'कादिरबेग' नहीं है ।

१ पुर०—क्यों ?

३ पुर०—अबकी हैं सयाने सयानेका सामना । आओ तो भैया, हमें मूर्ख समझकर सारी विद्या जाहिर कर रहे थे ।—अब !

२ पुर०—करो, करो—जिरह करो ।

५ पुर०—अच्छा, तुम्हारे बापका नाम क्या है ?

४ पुर०—जालिमबेग ।

५ पुर०—यह भी सुनी बात है ।

४ पुर०—कैसे ?

५ पुर०—तुम्हारे बाप जालिमबेग थे, यह तुमने कैसे जाना ?—सुनी बात है । क्यों, सुनी बात है या नहीं ?

४ पुर०—हाँ, इसे एक तरहसे सुनी बात ही कहना चाहिए ।

५ पुर०—बस, तुम्हारे बाप जालिमबेग नहीं थे ।

( पहला, दूसरा और तीसरा,—तीनों पुरवासी उत्साहसे 'शाबास, शाबास' कहकर उछल पड़ते हैं )

१ पुर०—करो, जिरह करो,—करो बेटासे जिरह !

४ पुर०—अच्छा, अगर मेरा बाप जालिमबेग नहीं तो और कौन है ?

५ पुर०—सो मैं क्या जानूँ । तुम्हारा बाप रघुनाथ तिवारी या रामसिंह राठौर होगा ।

४ पुर०—( क्रोधके स्वरमें ) यह क्या ! मैं हूँ कादिरबेग और मेरा बाप है रघुनाथ तिवारी या रामसिंह राठौर ?

५ पुर०—तुम कादिरबेग नहीं हो ।

४ पुर०—मैं कादिरबेग नहीं हूँ,—तो मैं कौन हूँ ?

५ पुर०—तुम शिवनाथ हो ।

४ पुर०—हूँ ! मैं शिवनाथ हूँ !—देखो, मैं कैसा शिवनाथ हूँ !

( पाँचवें पुरवासीको पकड़कर मारने लगता है )

५ पुर०—अरे, छोड़ो-छोड़ो ! ओः बापरे ! छोड़ो,—देखो तुम लोग—

४ पुर०—क्यों, मैं कादिरबेग नहीं हूँ ?

५ पुर०—हाँ हाँ, तुम कादिरबेग हो, तुम्हारे बाप कादिरबेग हैं, तुम्हारी चौदह पीढ़ी कादिरबेग है ।

४ पुर०—और मेरे बाप ?

५ पुर०—कह तो चुका कि कादिरबेग !

४ पुर०—मैं भी कादिरबेग और मेरे बाप भी कादिरबेग ? यह भी कहीं हो सकता है ? नहीं, मेरे बाप जालिमबेग हैं ।

५ पुर०—अच्छा ! तुम्हारे बाप जालिमबेग हैं, इससे ही अगर तुम गुश हो, तो मैं मान लेता हूँ कि तुम्हारे बाप जालिमबेग हैं ।

४ पुर०—(उसे छोड़कर) तू मेरे बाप-दादेमें गड़बड़ डालनेवाला था ! पाजी !

५ पुर०—अब मैं हार गया ।

१ पुर०—कैसे हार गये ! मार खाकर—

३ पुर०—हार कैसे गये ?

२ पुर०—तर्कमें तो तुम जीते हो ?

५ पुर०—ना भैया, मैं बराबर देखता आता हूँ कि जिसमें ताकत ज्यादा होती है, वह तर्कमें भी सदा जीतता है ।—वह देखो, बंदरका राजा आ रहा है । भागो सब लोग ।

१ पुर०—बंदरका राजा कौन ?

४ पुर०—भागें क्यों ?

५ पुर०—वही है क्या ?—वह तो बंदर भी नहीं है, राजा भी नहीं है ।—वह तो मनुष्य है ।

३ पुर०—देखनेमें कुछ बंदरसे मिलता-जुलता जरूर है ।

५ पुर०—लेकिन मनुष्योंको खाता है—

१ पुर०—तुम क्या कह रहे हो ! सच ?

५ पुर०—किष्किन्धासे आया है ।

४ पुर०—सच ?

५ पुर०—कुंभकर्णका नाती है ।

२ पुर०—अरे बाप रे !

५ पुर०—उसकी दाढ़ी-मूँछ नहीं देखते ?

३ पुर०—हाँ, ठीक तो है।

४ पुर०—भागो-भागो।

( सब 'भागो-भागो' कहते हुए भाग जाते हैं । )

[ दूसरी ओरसे बंदर-राजका प्रवेश ]

बंदरराज—करामत !

५ पुर०—महाराजने मुझसे यहीं ठहरनेके लिए कहा था, इसीसे—

राजा—अच्छा किया।—तुमसे जो मैंने कहा था सो याद है ?

करामत—जी हाँ। ऐसी बातोंमें शायद ही मुझसे कभी भूल हुई होगी।

राजा—तो फिर कल ही। शेरखों जब सबेरे पालकीपर चढ़कर शाही दरबारमें जायगा,—समझ लिया ?

करामत—जी हाँ।

राजा—मैंने अपने महाशतसे कह रक्खा है। लेकिन, वह शेरखोंको पहचानता नहीं। बाघसे लड़नेके बाद पाँच-छह दिनसे शेरखों खाटपर पड़ा है। बाहर नहीं निकला। कल बादशाहने उसे बुला भेजा है। वह जरूर दरबारमें जायगा। वही ठीक समय है। उसके शरीरमें अभीतक बाघकी चोटके घाव बने हुए हैं,—अच्छे नहीं हुए,—समझ गया ?

करामत—जी हाँ।

राजा—तू शेरखोंको पहचानता तो अच्छी तरह है ?

करामत—जी हाँ। शेरखोंको देखते-देखते मेरी दाढ़ी पकी है।

राजा—वस, तू ही उस हाथीके ऊपर रहना। महाशतको पहचनवा देना—समझ गया ?

करामत—हाँ राजा साहब—

राजा—और देख, यह बात किसीपर प्रकट न होने पावे।

( करामतने इशारेसे यह प्रकट किया कि उसके द्वारा यह बात किसीपर प्रकट न होगी । )

राजा—बहुत इनाम मिलेगा। जा।

( करामतका प्रस्थान )

राजा—समाप्त कैसे खुश होंगे, जब जानेंगे कि खुद मैंने शेरखोंको उनकी

राहसे दूर हटा दिया है ! उस दिन रातको बादशाहने मेरे सामने जब कहा कि “शेरखों शेरसे लड़कर जीता है, इससे मैं खुश जरूर हुआ। लेकिन अगर शेर जीतता, तो और भी खुश होता।” तब इसका अर्थ मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया !— बादशाह मेरे ऊपर कैसे खुश होंगे ! ओ : !—कैसे खुश होंगे !

## चौथा दृश्य

स्थान—आगरेमें शेरखोंका घर

[ दोमैजिलेपर नूरजहाँ और उसकी एक सखी ]

नूर०—उसदिन सम्राट् मीड़-भाड़के साथ सबकपर शिकारसे लौटे आ रहे थे। मीड़मेंसे कोई-कोई ‘शाबास शेरखों’ कहकर चिल्ला रहा था। मैं कुतूहलके कारण देखनेके लिए खिड़कीके पास चली गई।

सखी—फिर ?

नूर०—जाकर देखा, खूब मीड़-भाड़ है। सम्राट् घोड़ेपर चढ़े उस मीड़के बीचमें हैं। उन्होंने एकाएक ऊपरकी ओर आँख उठाकर देखा, तो मेरी और उनकी चार आँखें हो गईं। मुझे जान पड़ा, सम्राट्का मुख उज्ज्वल हो उठा है। मेरी नस-नसमें गर्म खून चक्कर मारने लगा। मैं क्रोध क्षोभ और लज्जाके मारे कट गई। उसके बाद ही मेरे स्वामी घर आये। उनके शरीरमें बहुतसे घाव थे। मुझे देखकर उन्होंने पूछा—क्या हुआ मेहर ? मुझे उनका वह पूछना मिडकीसे भी कड़ा मालूम पड़ा।

सखी—तुम जब सम्राट्को पहलेहीसे चाहती थीं तो तुम्हें शेरखोंसे ब्याह नहीं करना था।

नूर०—नहीं, मैंने सम्राट्को कभी चाहकी निगाहसे नहीं देखा।—अपनी वह कहानी मैंने तुमसे नहीं कही। किसीसे भी नहीं कही। किन्तु कहती हूँ, मुनो। कहनेका कारण यह है कि मैं तुमसे उपदेश चाहती हूँ।

सखी—कहो।

नूर०—(कुछ सोचकर) ना। अच्छा, कही डालूँ—मुनो। उस समय मेरा ब्याह नहीं हुआ था; लेकिन, शेरखोंसे ब्याह होनेकी बात पक्की हो गई थी। उस समय भारतके सम्राट् अकबरशाह थे। एक दिन सम्राट्के परिवारमें रातका

भोजन था। भोजनके बाद जब सब मेहमान उठकर चले गये,--अन्तःपुरमें सम्राट्के परिवारके लोग ही रह गये, तब हम कई औरतें बुर्का डालकर उन लोगोंके सामने नाचने लगीं।

सखी--क्यों ?

नूर०--तुम नहीं जानतीं, यह एक चाल है। जो लोग सम्राट्के बड़े ही प्रिय-पात्र हैं, उनकी छियाँ बुर्का डालकर कभी-कभी बादशाहके यहाँ नाचती हैं।

सखी--सच ?

नूर०--मेरे पिता सम्राट्के अत्यन्त प्रियपात्र होनेके कारण उस परिवारके आत्मीयोंमें ही गिने जाते थे। यद्यपि पहले उन्होंने रातको मेरे नाचमें जादेपर आपत्ति की थी; परन्तु मेरे बहुत अनुनय-विनय करनेपर और मेरे भाई आसफ्के यह कहने-पर कि मुँह ढँककर नाचना होगा, कोई पहचान न सकेगा, मेरे पिताने मेरा जाना मंजूर कर लिया था।

सखी--( आग्रहके साथ ) फिर क्या हुआ ?

नूर०--रातको हम लोगोंने नाचना शुरू किया। वहाँपर शाहजादा सलीम उपस्थित थे। बाजेके ऊपर हम लोगोंका नाच, तरंगोंके ऊपर नाचकी तरह, हर एक तालपर थिरकने लगा। फिर मैंने गाना शुरू कर दिया। बुर्केके भीतरसे मैंने देखा कि शाहजादा मेरे नाच और गानेपर मुग्ध होकर मेरी ओर टकटकी बाँधे हुए हैं। बुर्का मानों आप-ही-आप खुल गया। हम लोगोंकी चार आँखें हो गईं। मैंने बहुत ही ब्याकुल भावसे बुर्का डाल लिया। सलीम पागलकी तरह मेरी ओर दौड़ पड़े। परिवारके और लोगोंने उन्हें पकड़ लिया और उनकी जगहपर बिठा दिया। सभा टूट गई। मैं मानों एक तरहके विजय-गर्वके साथ घर लौट आई।

सखी--अब मेरी समझमें आ रहा है।

नूर०--दो दिनके बाद, एक दिन जब मेरे पिता और भाई आसफ घरमें नहीं थे, सलीम एकदम मेरे पास आकर उपस्थित हो गये। उनकी बातोंसे मैंने समझ लिया कि मेरी सोलह आने जीत हो गई है। मैंने कुछ भी नहीं कहा। इस समय मेरे पिता लौट आये। सलीम धीरे-धीरे घरसे चले गये। उसके बाद ही शेरखोंके साथ मेरा ब्याह हो गया और अकबरने उन्हें बर्दवानमें वहाँका शासक बनाकर भेज दिया।

सखी--तबसे तुम्हारी और सलीमकी मुलाकात नहीं हुई ?

नूर०—नहीं । तबसे आगरे लौट आनेपर यही मुलाकात हुई है ।

सखी—तो उनपर अब भी तुम्हें अनुराग है ?

नूर०—नहीं, यह अनुराग या आसक्ति नहीं है ।—यह एक उद्दाम प्रवृत्ति है । यह या तो उच्च आशा है या अहंकार है । लेकिन अनुराग या आसक्ति नहीं है ।

सखी—मैं कहती हूँ, तुम बर्दवानको लौट जाओ । नहीं तो आगे चलकर तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी । दूर चले जानेपर फिर पुरानेमें मन लग जायगा ।

नूर०—( अर्ध स्वगत ) और फिर शेरखोंके सदृश स्वामी किसके है ? पराक्रममें, उदारतामें, पवित्र चरित्रमें उनके समान संसारमें कितने आदमी हैं ?—लो, वे मेरे पिता और स्वामी आ रहे हैं ।

सखी—तो अब मैं जाती हूँ बहन !

नूर०—अच्छा बहन, देखो, ये सब बातें किसीपर प्रकट न हों । तुम्हें बहुत ही अपना समझकर मैंने सब कच्चा हाल कह दिया है । किसीसे कहना मत ।

सखी—नहीं, किसीसे न कहूँगी ।

नूर०—चलो, तुम्हें नीचेतक पहुँचा आऊँ । ( दोनों जाती हैं । )

[ बातें करते हुए शेरखों और आयश प्रवेश करते हैं । ]

आयश—तुम्हें खाली हाथ शेरसे लड़ानेमें मुझे कुछ सन्देह हुआ था । लेकिन आज फिर तुम्हें हाथीके पैरके नीचे कुचलवानेकी यह चंष्टा देखकर मुझे निश्चय हो हो गया है कि सम्राट् तुम्हें मरवा डालना चाहते हैं । उनको अपने न्याय-विचारके सम्बन्धमें कुछ अभिमान है, इसीसे वे प्रकट रूपसे तुम्हारे प्राण नहीं ले सकते । यही कारण है कि वे गुप्तरूपसे चालाकीके साथ तुम्हें मरवा डालना चाहते हैं । तुमने अपने बलसे आज मस्त हाथीको मार डाला, और कोई होता तो उसकी जान जरूर जाती ।

शेर०—लेकिन मेरी समझमें नहीं आता कि मेरी जान लेकर सम्राट्को क्या लाभ होगा ?

आयश—सरल और उदार शेरखों, इसी कारण मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ । यह बात मैंने तुमसे अबतक नहीं कही । संकोच मालूम पड़ता था । लेकिन जब जीवन-मरणकी समस्या आ पड़ी है, तब कहे बिना काम नहीं चल सकता । सुनो, तुम्हारी मृत्युसे सम्राट्को लाभ होगा मेरी लक्ष्मी और तुम्हारी स्त्री मेहरुन्निसाका ।

शेर०—क्या !—तो क्या सम्राट्—

( इतना कहकर शेरखाने सहसा अपनी तलवारके कब्जेपर हाथ डाला । )

आयश—इस तरह क्रोधमें आ जाना ठीक नहीं । स्थिर होकर सुनो । मेहरू-  
न्सिका जब तुम्हारे साथ ब्याह नहीं हुआ था, तबकी बात तुमको याद है ?

शेर०—याद है । लेकिन मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सका कि मनुष्य इतना  
नीच हो सकता है । वह ब्याही हुई पराई स्त्रीको—

आयश—मैं जो कहता हूँ सो सुनो शेरखाना, तुम बंगालको लौट जाओ ।  
सम्राट् पराक्रमी और तुमसे सब तरह शक्तिशाली हैं । तुम यहाँ रहोगे तो तुम्हारी  
जान जायगी ।

शेर०—लौट जाऊँ ?

आयश—हाँ । और यदि दो-चार दिन यहाँ रहो, तो खूब सावधान रहो । घरसे  
बाहर मत निकलो । तुम्हारे शरीरमें इस समय भी शेरके पंजेके घाव हैं । यह कह  
देनेसे बादशाहको कुछ भी सन्देह न होगा कि तुम खाटपर पड़े हुए हो । बाहर न  
निकलना और सोनेके कमरेके दरवाजे बंद करके सोना ।—रात हो गई है, मैं जाता हूँ ।

( धीरे-धीरे प्रस्थान )

शेर०—वह इस समय दूसरेकी रत्नी है, तिसपर भी सम्राट्,—ओः; सोचमें  
डाल दिया । भारी सोचमें डाल दिया !

[ नूरजहाँका प्रवेश ]

शेर०—यह लो, मेहर आ गई ।—कहाँ थीं ?

नूर०—मुईनुद्दीनकी बीबी आई थी । उसे मेजने नीचे गई थी । अब्बा आये थे ?

शेर०—हाँ ( कोमल स्वरसे ) मेहर, चलो, हम लोग बर्दवान ही चलें !

नूर०—( सहसा ) हाँ, अच्छी बात है । चलो चलें । कल ही चलो !

शेर०—इतना उत्तेजित क्यों होती हो मेहर ? क्या हुआ है ?

नूर०—कुछ नहीं,—यहाँ घड़ी-भर भी ठहरनेको मेरा जी नहीं चाहता । और  
कुछ नहीं, ( दृढ़तासूचक स्वरसे ) मैं यहाँ नहीं रहना चाहती ।

शेर०—अच्छी बात है । यही होगा । शीघ्र ही बर्दवानको लौट चलेंगा ।  
नीचे चलो । खाना तैयार होगा । चलो ।

## पाँचवाँ दृश्य

स्थान—आगरेमें सम्राट्का महल

समय—तीसरा प्रहर

[ जहाँगीर अकेले टहल रहे हैं ]

जहाँ०— नहीं, अब मैं अपनी इच्छाको दबाकर नहीं रह सकता । उस दिनसे एक तरहका उन्माद-सा मेरे हृदयपर अधिकार कर बैठा है । मैं किसी तरह उसकी यादको अपने जीसे नहीं हटा सकता । उस दिन खिड़कीमेंसे देखा,—कैसा वह रूप था ! मानों बर्फ़के ऊपर उषाका उदय हो, मानों सजाटेकी आधी रातमें ईमनकी पहली तान हो; मानों मनुष्यकी शुरू जवानीमें प्रेमका प्रभात हो !—वह एक निःसंग सुखकी तरह नहीं है, मधुर रागिनीकी तरह नहीं है, खिले हुए फूलकी तरह नहीं है । वह मानों भारतका नहीं है, ईरानका नहीं है, अरबका नहीं है, भूत, भविष्य या वर्तमानका नहीं है, स्वर्गका नहीं है, मनुष्य-लोकका नहीं है ! वह मानों सब देशोंका है, सब समयोंका है ! स्वर्ग और मनुष्य-लोक, दोनोंके देखनेके लिए, दोनोंके बीचमें रक्खी हुई एक जुदी ही सृष्टि है !—वह मानों देवताकी प्रेरणा, कविका सफल स्वप्न, ब्रह्माण्डका विस्मय है !—कैसी वह मूर्ति है ।

[ इसी समय बन्दरराज आकर सम्राट्को बन्दगी करता है । ]

जहाँ०—आ गये राजासाहब ? मैं इस समय आप्रह्मे साथ आपकी राह देख रहा था ।

राजा—खुदाबन्द !

जहाँ०—जान पड़ता है, आपने अनुमान कर लिया होगा कि मैंने आपको क्यों बुला मेजा है ?

राजा—खुदाबन्द !

जहाँ०—शेरख़ा यहाँसे बंगाल चला गया है । जरूर इसी कारणसे गया है । और कोई कारण होता, तो, इसमें सन्देह नहीं कि मुझसे कहकर जाता ।

राजा—खुदाबन्द !

जहाँ०—तो अब छिपानेकी जरूरत नहीं है !—मैं प्रकट रूपसे शेरख़ाकी

विधवाको चाहता हूँ । ( पृथ्वीपर पैर पटककर—) समझ गये ! ( राजा कौपते हुए अस्फुट स्वरमें सम्राट्के साथ ही साथ कहता है—) खुदावन्द !

जहाँ०—डरिए नहीं ! मैं बहुत ही उत्तेजित हो उठा हूँ । मेरा क्रोध आपके ऊपर नहीं,—इस शेरखोंके ऊपर है । आप मेरी इच्छा प्रकट होनेके पहले ही समझ गये थे । आपपर मैं प्रसन्न हूँ । अगर आप अपने काममें सफलता प्राप्त करेंगे तो मैं आपको इतना और ऐसा इनाम दूँगा जिसकी आपने आशा भी न की होगी,—मैं उसे चाहता हूँ ।

राजा—जो हुक्म खुदावन्द !

जहाँ०—बंगालके सूबेदारसे मैंने कहला भेजा था, मगर, मैं देखता हूँ, वह कायर है और इस मामलेमें ध्यान नहीं देता । आपको वहाँ जाकर उसे इस कामके लिए उत्तेजित और उत्साहित करना होगा । समझ गये ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—कल ही जाइए,—तबके । समझे ? देर न हो । जहाँतक जल्दी हो सके, यह काम कर डालो । मैं उसे चाहता हूँ,—समझ गये ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—तो अब आप जा सकते हैं, बहुत बड़ा इनाम मिलेगा ।—समझ गये ?

राजा०—खुदावन्द ?

जहाँ०—जाइए ।

( राजाका प्रस्थान )

जहाँ०—मैं जानता हूँ, यह घोर अन्याय है,—भयानक अविचार है । तो भी शेरखोंको मारना होगा । मैंने उससे कहा था कि तू अपनी स्त्रीको छोड़कर मुझे सौंप दे । उसने उसका उत्तर वीरोंकी ही तरह दिया । तो भी उसी स्त्रीके लिए उसे मरना होगा । जब विकार होता है तब अत्यन्त स्वादिष्ट हितकर वस्तु भी बमनमें निकल जाती है । न्याय-अन्यायका विचार बहुत दूर चला गया । हित-अहितके विचारकी शक्ति अब मुझमें नहीं रही । उसे मरना ही होगा ।

छट्टा दृश्य

स्थान—पारदुयामें शेरखोंका घर

समय—रात

[ लैला गा रही है । शेरखों और नूरजहाँ दोनों सुन रहे हैं । ]

गीत

तुमरी, पंजाबी ठेका

क्यों वरसत है सघन श्याम घन वर्षामहें जल-धाग,  
जो न जगावै भूमरडलपर हास्य-हर्ष-सुख प्यारा ॥ क्यों० ॥

तदपि हँसे जो भूमि, हँसीका तो वह ढंग निराला ।

ऊपर हँसी, हृदयके भीतर जलती दारुण ज्वाला ॥ क्यों० ॥

नूर०—यह गीत तुमने किससे सीखा है लैला ?

लैला—मौसीसे ।

नूर०—उसने यह गाना सिखाया है ? उसकी यह दुष्टता है ।

शेर०—क्या हुआ मेहर ? इसमें अन्याय क्या हुआ ?

नूर०—सो तुम क्या समझोगे ?—खबरदार ! मेरे आगे अब यह गाना कभी न गाना । समझो लैला ?

लैला—समझ गई अम्मी ।

नूर०—जाओ, सोओ जाकर; जाओ, मैं भी आती हूँ ।

( लैला चली गई । नूरजहाँ कुछ देरतक खिड़कीसे बाहर झाँकती रहती है । )

शेरखों—( धीरेसे ) मेहर !

नूर०—नाथ, मैं कुछ रुखी पड़ गई थी, क्षमा करो ।

शेर०—कुछ नहीं मेहर, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है । समझ गया, तुम किसी कारणसे खीझी हुई थीं । अपने आपसे बाहर थीं ।

( नूरजहाँ चुप रहती है । )

शेर०—( उठकर नूरजहाँके पास जाकर, उसका हाथ पकड़कर स्नेहके स्वरमें )  
मेहर, कुछ न कुछ हुआ अवश्य है । तुम्हारे हृदयके भीतर कोई चिन्ता कीबेकी तरह घुस अवश्य गई है । वह कौन चिन्ता है प्यारी, मुझसे कहो । मैं तुम्हारा स्वामी हूँ । मुझसे नहीं कहोगी ?

नूर०—नाथ, मुझे कुछ भी नहीं कहना है।—सोओ नाथ, बहुत रात बीत गई है। मैं जाती हूँ,—लैला अकेली है।

( सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे नूरजहाँका प्रस्थान । )

शेर०—आगरा छोड़कर जबसे पाण्डुयामें आया हूँ, तबसे मेहर और भी अस्थिर हो उठी है। बात करते-करते एकाएक विचलित हो उठती है, और फिर नर्म पड़कर अनुनय करती है। मेरी मेहरको यह क्या हो गया है ?—पूछनेसे कुछ उत्तर नहीं देती। मेरी सुखमय गृहस्थीमें न जाने यह क्या गड़बड़ मच गई है !—वह बाहेका शब्द है ? नहीं, हवाका खटका है, पाण्डुयामें आकर सुख भले ही न हो, कुछ दिनोंके लिए बेखटके तो हो गया हूँ।—रात बहुत बीत गई है। नींद आ रही है।

( शेरखॉ लेट जाता है। बहुत जल्द नींद आ जाती है। दमभर बाद

वई आदमी सावधानीके साथ धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं )

१ आदमी—( धीमे स्वरसे ) सो रहा है।

२ आ०—( वैसे ही स्वरमें ) मारो।

३ आ०—( वैसे ही स्वरमें ) सब लोग एक साथ तलवारें खींच लो।

४ आ०—( वैसे ही स्वरमें ) वार खाली न जाय।

५ आ०—( वैसे ही स्वरमें ) तैयार हो ? फिर देर काहेकी है ? मारो।

( सब शेरखॉको मारनेके लिए आगे बढ़ते हैं । )

सरदार—( आगे आकर ) नहीं। हम इतने आदमी मिलकर एक आदमीको मारेंगे !—और सो भी तब जब वह पड़ा-पड़ा बेखबर सो रहा है। नहीं, यह नहीं हो सकता,—उठने दो।

( शेरखॉकी आँख खुल जाती है । )

शेर०—( ज़ठकर ) यही तो मुनासिब बात है।

( शेरखॉ अपनी तलवार लेना चाहता है। सब हत्यारे उसपर

आक्रमण करना चाहते हैं । )

सरदार—अभी नहीं, तलवार ले लेने दो।

शेर०—( तलवार लेकर ) अब आओ।

( शेरखॉ सबका सामना करता है। सब आदमी एक एक करके

शेरखॉकी तलवारसे कट-कटकर मर जाते हैं )

शेर०—( सरदारसे ) तुम्हें न मारूँगा । तुमने मेरी जान बचाई है । हथियार रख दो ।

( सरदार हथियार रख देता है )

शेर०—अब बताओ, किसके हुक्मसे तुम मुझे मारने आये थे ?

[ नूरजहाँका प्रवेश ]

नूर०—( चारों ओर पड़ी हुई लाशों और शेरखोंको खूनसे तर देखकर डरी हुई आवाजमें ) यह क्या ! ये सब कौन हैं ?

शेर०—डरो नहीं मेहर, मैंने इन सबको समाप्त कर डाला है । इस सरदारने ही एक तरहसे मेरी जान बचाई है । बताओ सरदार, किसकी आज्ञासे मुझे मारने आये थे ?

सरदार—सूबेदारके हुक्मसे ।

शेर०—वह क्यों मेरी जान लेना चाहता है ?

सरदार—बादशाहके हुक्मसे ।

( शेरखों नूरजहाँ की तरफ देखता है )

शेर०—( सरदारसे ) अच्छा, जाओ ।

( सरदारका प्रस्थान )

नूर०—क्या सम्राट्की डाह यहाँ तक है ! कैसा अत्याचार है ! कैसी दुष्टता है ! कैसा उपद्रव है !

## सातवाँ दृश्य

स्थान—अकबरकी समाधिके पासका जंगल

समय—रात

[ षड्यन्त्र रचनेवाले लोग खड़े हुए मानो किसीकी राह देख रहे हैं ]

१ आदमी—शाहजादा विद्रोह करना स्वीकार कर लें, तो है ।

२ आ०—कुछ विश्वास नहीं है ।

३ आ०—हाँ, उनकी बुद्धि चंचल है ।

४ आ०—मानसिंह अगर हमारे सहायक होते !

१ आ०—वह अकबरसे, उनके मरते समय, जहाँगीरके विरुद्ध कभी युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं। वह अपनी अटल प्रतिज्ञासे तनिक भी विचलित नहीं हो सकते।

२ आ०—हम अगर अपने काममें सफलता न पा सकें तो हमारा कुछ बनता बिगड़ता नहीं है।

३ आ०—वह लो, शाहजादा साहब आते हैं।

[ खुसरूका प्रवेश ]

सब—बन्दगी शाहजादा साहब।

४ आ०—हम लोग बहुत देरसे आपकी राह देख रहे हैं। आपने इतनी देर क्यों की शाहजादा साहब ?

खसरू—सुनो, पिताने मुझपर सन्देह करना शुरू कर दिया है। मैं आज दादाकी समाधिपर फूल चढ़ानेका ह्रीला करके आया हूँ। तो भी मैंने देखा, मेरे पीछे जासूस लगा हुआ है।

१ आ०—चाहे जो हो। आप इस समय स्वीकार करते हैं ?

खसरू—मैंने सोचकर देखा कि पिताके विरुद्ध विद्रोह करना मेरी ताकतके बाहर है।

२ आ०—यह क्या शाहजादा साहब ? ईंधन तैयार है। आप उसमें आग लगा दें, सब इतनी ही देर है। अब पीछे हटनेसे कहीं काम चल सकता है।

खसरू—मैंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की।

आ०—नहीं की ? हम तो यही समझते थे।

खसरू—और यह सब तैयारी निष्फल है। हम लोग विजय नहीं पा सकेंगे। अगर मामा मानसिंह सहायता करते—

४ आ०—सहायता करते क्या ? वह तो हमारे सहायक हैं ही।

खसरू—कहाँ ! मुझे तो यह हाल नहीं मालूम ?

४ आ०—लेकिन वे प्रकट रूपसे कुछ नहीं करेंगे। गुप्त रूपसे सहायता करेंगे।

खसरू—करेंगे ?—आप लोग निश्चित रूपसे जानते हैं ?

सब—खूब अच्छी तरह जानते हैं।

खसरू—( कुछ सोचकर )—लेकिन—

१ आ०—इस बारेमें फिर भी 'लेकिन' क्या शाहजादा साहब ? हम लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि जहाँगीरको सिंहासनसे उतारकर आपको बिठलायेंगे ।

खुसरू—( सोचकर ) आप लोग अन्त तक मेरी सहायता करेंगे ?

सब—निश्चय !

खुसरू—देखो, यह गहरी रात है । यह मेरे पूज्यपितामहकी समाधि है । इस स्थानपर इस समय आप लोग सच्चे दिलसे कसम खाइए कि आप लोग अन्त तक मेरी सहायता करेंगे ।

सब—हम सब कसम खाते हैं ।

खुसरू—अच्छी बात है । तो मैं सहमत हूँ ।

४—आ०—मैंने शाहजादा साहबसे प्रस्ताव किया था—

खुसरू—क्या ?—गुस्नरूपसे पिताकी हत्या ?—नहीं, मुझसे यह काम न होगा । पिता राज्य चले जानेपर सुखसे जीवन धारण कर सकेंगे । पिताके खूनसे रंगे हुए हाथसे मैं राज-दण्ड नहीं पकड़ सकूँगा ।

सब—अच्छी बात है ! अच्छी बात है !—यही तो शाहजादेके योग्य बात है ।

१ आ०—तो कल सबेरे सेना लेकर दिल्लीको घेर लेंगे ।

२ आ०—निश्चय ही । लेकिन रसद और शस्त्रोंका अड्डा पहले हाथमें कर लेना चाहिए ।

३ आ०—शाहजादा साहब, तैयार रहिएगा ।

खुसरू—तैयार रहूँगा । लेकिन उससे पहले कोई इस बातको जान न सके ।

४ आ०—कोई न जान सकेगा ।

खुसरू—तो यही बात पक्की रही । अब सब जाओ ।

### आठवाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानमें शेरखाँका घर

समय—प्रातःकाल

[ नूरजहाँ अकेली खड़ी हुई दामोदर नदीकी ओर देख रही है ]

नूर०—( लम्बी साँस लेकर ) यह वही बर्दवान है । तो भी कैसा परिवर्तन

हो गया है ! उस दिनका सुख इस समय भी याद आता है ! ( लम्बी साँस लेकर सिर झुकाये हुए दो-चार पग आगे बढ़कर ) उस चढ़ती जवानीकी चंचलता-को मैंने दबा लिया था । मनको समझा दिया था कि वह बचपनका एक खयाल है । तब मैंने यह नहीं समझा था कि वह प्रवृत्ति उस समय केवल दबा ही गई थी, मरी नहीं थी । चिनगारी राखसे ढकी हुई थी, बुझ नहीं गई थी । अब वह चिनगारी नया ईंधन पाकर फिर धुआँ देने लगी है । भगवन्, स्त्रीके हृदयको इतना कमजोर बनाया है ! —इस प्रवृत्तिको क्या अब दबा नहीं सकती ?

[ शेरख़ाँका प्रवेश ]

शेर०—हाँ मेहर, बंगालके सूबेदार कुतुब बर्दवान आ रहे हैं । उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए जा रहा हूँ ।

नूर०—( विस्मयके साथ ) तुम उनके पास क्यों जा रहे हो ?

शेर०—क्या तुमको आश्चर्य हो रहा है ? वे सूबेदार हैं और मैं बर्दवानका एक इज्जतदार उमराव हूँ । उनकी अभ्यर्थना नहीं करूँगा ?

नूर०—याद है पाराडुयाकी वह रात ?

शेर०—याद है मेहर ।

नूर०—फिर भी जा रहे हो ?

शेर०—हाँ, तब भी जा रहा हूँ ।

नूर०—मैं कहती हूँ, मत जाओ । अगर जाओगे, तो तुम्हारे प्राणोंपर बन आना सर्वथा संभव है । इसमें सन्देह नहीं कि अबकी बार तुम्हारी हत्याकी विशेष तैयारी किये बिना सूबेदार नहीं आया है । इस बार जाओगे तो निश्चय जानो, फिर न लौटोगे ।

शेर०—( रुखी हँसी हँसकर ) अगर ऐसा ही होगा तो तुम भारतकी राजरानी बनोगी । बुरा क्या है !

नूर०—आप यह कैसी दिल्लगी करते हैं !

शेर०—नहीं मेहर, यह दिल्लगी नहीं । यह जीवन-मरणकी समस्या है । मैं सच कहता हूँ, अब मुझे जीनेके लिए कोई उत्साह नहीं है ।

नूर०—यह क्या कह रहे हो नाथ ।

शेर०—हाँ मेहर, इस तरह भागकर जान बचानेसे मरना बहुत अच्छा है ।

दिन-रात एक सन्देह, संकोच और शंका में जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। क्यों ? किस अपराधसे ?—एक दिन तुमने एक बात कही थी, याद है मेहर ?

नूर०—क्या ?

शेर०—कि इतना सुख देव देख नहीं सकता।—हमारे सुखको भी देव नहीं देख सका।

नूर०—( कुछ देर चुप रहकर ) चलो नाथ, हम इस ईर्ष्यापूर्ण संसारको छोड़कर भाग चलें और बहुत दूरके किसी जंगली गाँवमें जाकर किसानोंकी तरह अपना जीवन बितावें। सम्राट् जहाँगीरकी डाह इतने नीचे उतरकर हम लोगोंका पीछा न कर सकेगी।

शेर०—ना मेहर, अब न भागूंगा। अबकी विपत्तिके पास खुद जाऊँगा और उसे गले लगाऊँगा। अगर मौत होगी, मरूँगा, तो भी तुम्हारे लिए। ( गद्गद स्वरमें ) तुम्हारे लिए मरनेमें भी सुख है।—और एक बात कहूँगा मेहर !—नहीं—कही डालूँ, मैं मरना ही चाहता हूँ।

नूर०—क्यों नाथ ?

शेर०—सुनोगी, क्यों ? मैंने समझ लिया है, जान लिया है और हृदयमें इसका पूर्ण अनुभव कर लिया है कि अब तुम मुझे प्यार नहीं करती।

नूर०—प्यार नहीं करती ?

शेर०—ना, मुझे तुम्हारी निगाहसे, चीन्हा हँसीसे, भर्राई हुई आवाजसे और तुम्हारे इस 'प्यार नहीं करती ?' प्रश्नसे इस बातका पता लग रहा है।

( नूरजहाँ चुप रहती है )

शेर०—कहाँ तो तुम्हें जहाँगीरकी बेगम होना चाहिए था और कहाँ तुम सम्राट्के दासानुदास शेरखाँकी स्त्री हुई ! कहाँ तुम आगरेके संगमभैरके महलमें रहती और कहाँ इस दीन शेरखाँकी भोपड़ीमें पड़ी हुई हो ! कहाँ तुम सूर्यकी तरह सारे भारतवर्षमें अपना प्रकाश फैलाती और कहाँ इस गरीबके घरमें दीपककी तरह टिमटिमा रही हो।

नूर०—मैंने क्या कभी यह बात कही है ?

शेर०—ना, कही नहीं ! तो भी मैं समझता हूँ। हो सकता है, मैं मनुष्य-चरित्रको ठीक न समझ सकता हूँ; किन्तु मैं प्रेमी—प्रेमका प्यासा हूँ। पानी न मिलने

पर प्यासेको अपनी प्यास समझनेके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता । मैं तुम्हारे पास सूखा हुआ तालु लेकर गया और वैसा ही लौटा ।—मेहर, प्रेम केवल विश्वास और सेवा नहीं चाहता । यह प्यास भीतरकी है ।

नूर०—स्वामी, मेरे देवता,—मुझे क्षमा करो ।

( पैरोंपर गिर पड़ती है । )

शेर०—ना मेहर, गलती तुम्हारी नहीं, मेरी है । जिससे ब्याह करनेके लिए शाहजादा,—भारतका भावी सम्राट् पागल हो रहा था, उससे मुझ दीन-दरिद्र शेरखोंका ब्याह करना आगमें पतंगका फौंदना नहीं तो और क्या था ? मैंने सोचकर देखा है, गलती मेरी ही थी ।

नूर०—गलती तुम्हारी थी ?

शेर०—हाँ, गलती मेरी थी । तो भी मेहर, तुम मुझे दोष न देना और सोचकर देखना कि वह कैसा प्रलोभन था ! हे सुन्दरी, जिस दिन तुम मेरी उद्भ्रान्त दृष्टिके आगे उदय हुई, जब मेरी उन्मुख वासनाके बीचसे तुमने अपने रूपकां रथ चला दिया, जब जीवनका ध्यान शरीरधारी होकर मुझे अपने जागते हुए स्वप्नमें आकर दिखाई दिया, तब मैं अपनेको नहीं सँभाल सका, क्योंकि मैं मनुष्य हूँ !—दुर्बल मनुष्यमात्र हूँ ! और वह मेरी शुरु जवानी थी, मेहर !—शुरु जवानी थी ! जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी बहुत ही हरी-भरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियों जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त जैसे जान पड़ते हैं, जब कोकिलका गान एक स्मृति-सा और मलय-पवन एक स्वप्न-सा जान पड़ता है; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन सजला बिजलीकी चमक और आलिंगन आत्माका प्रलय जान पड़ता है !—उसी जवानीमें मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी !—नहीं जानता था कि मैं विष-पान कर रहा हूँ !—मेहर, ( हाथ पकड़कर ) दरवाजा बन्द करो, मैं जाता हूँ । ( चुम्बन ) अगर लौटकर न आ सका तो यही आखिरी मुलाकात है !—बस, विदा ! ( शीघ्र प्रस्थान )

नूर०—ओः ! ( क्षणभर बाद ) स्वामी, अगर भक्ति प्रेमकी शून्यताको पूरा कर सकती, तो मैं वह भक्ति तुम्हारे पैरोंमें अर्पण कर देती । ( प्रस्थान )

## नयाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानकी राह

समय—दिनके तीन घंटे

[ बंगालके सूबेदार कुतुब, उसके मंत्री और सैनिक खड़े-खड़े बातचीत कर रहे हैं । ]

कुतुब—( दूरपर दृष्टि डालता हुआ ) वह शेरख़ाँ आ रहा है न ?

मंत्री—हाँ जनाब ।

कुतुब—( सैनिकोंसे ) सिपाहियो, तुम सब तैयार हो ?

सिपाही—हाँ हुजूर !

कुतुब—अगर काम पूरा हो गया, तो क्या पुरस्कार मिलेगा और अगर किसीने पीछे पैर हटाया तो क्या दण्ड दिया जायगा ?—याद है ?

सिपाही—याद है ।

कुतुब—बस चुपचाप खड़े रहो । मेरी आज्ञाकी राह देखते रहो । याद रहे कि वह और कोई नहीं, शेरख़ाँ है ।

( शेरख़ाँ आकर बंदगी करता है । )

कुतुब—( बंदगीका जवाब देकर ) आइए, आप कुशलसे तो हैं ?

शेर०—हाँ जनाब !

कुतुब—परिवारमें सब कुशल है ?

शेर०—हाँ जनाब !

कुतुब—बर्दवानमें इस समय बीमारी या किसी तरहकी अशान्ति तो नहीं है ?

शेर०—विशेष कुछ नहीं ।

कुतुब—यहाँ आपको कुछ कष्ट तो नहीं है ?

शेर०—कुछ नहीं ।

कुतुब—मैं बर्दवानमें पहले कभी नहीं आया था ।—बहुत अच्छा शहर है ।

शेर०—हाँ, बहुत अच्छा है ।

कुतुब—तो अब आप अपने घोड़ेपर चढ़िए । मैं हाथीपर चढ़ूँगा । धूमधामके

साथ नगरके भीतर प्रवेश करना होगा ।

शेर०—जो आज्ञा ।

कुतुब—तो चलिए ।

( कुतुब और शेरखॉका प्रस्थान । पीछेसे मंत्री जाते हैं । दो चार अनुचर पीछे राह देखते हैं । )

कुतुब—( दमभर बाद नेपथ्यमें ) सिपाहियो !

शेर०—( नेपथ्यमें ) कुतुब, यह मैं पहलेसे ही जानता था । आज मरनेहीके लिए आया हूँ । मगर अकेले नहीं मरूँगा, पहले तुम आओ ।

( नेपथ्यमें शस्त्रोंकी झनकार, बन्दूकोंकी आवाज, आर्तनाद और मनुष्यका कोलाहल । युद्ध करते-करते शेरखॉ और सिपाही फिर प्रवेश

करते हैं और पांच-छः सिपाही शेरखॉके वारसे

पृथ्वीपर लोट जाते हैं । )

शेर०—( ऊँचे स्वरसे ) बस, अब नहीं, मैं हथियार रक्खे देता हूँ । मैं मरनेके लिए तैयार हूँ । तुम अगर मुसलमान हो तो मरनेसे पहले मुझे ईश्वरसे प्रार्थना करनेके लिए थोड़ा-सा समय दो ।

( सब ठहर जाते हैं । )

शेर०—तुम्हारा सूबेदार कुतुब मरा पड़ा है । तुम क्षुद्र जीव हो, तुमको मारनेसे कोई फायदा नहीं । अगर इस समय ज़रा सम्राट् जहाँगीरको पा जाता !—पर इस बातको जाने दो, लो हथियार रक्खे देता हूँ । ( अन्न-परित्याग )

( सब ठहर जाते हैं । )

( शेरखॉ पश्चिममुख होकर सिरपर धूल डालकर आँखें बन्द करके प्रार्थना करता है । फिर उठकर खड़ा होता है । )

शेर०—हो गया । सिपाहियो, अब मैं मरनेको तैयार हूँ । मुझे मारो ।

( तीन तरफसे तीन गोलियाँ आकर शेरखॉको लगती हैं और वह पृथ्वीपर गिर पड़ता है । )

## दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरा, सम्राट् के खजाने की आसफका घर

समय—तीसरा पहर

[ बंदरराज और बादशाह के मुसाहब लोग बात चीत कर रहे हैं ]

१ मु०—पहले तो विधवा के स्वामी की हत्या करा डाली और फिर उसे आगरे के महल में लाकर रख दिया । यदि ऐसा काम हम लोगों में से कोई कर बैठता तो वह अत्यन्त निर्लज्ज कहलाता ।

राजा—विधवा को कहीं सहारा नहीं है, बेचारी कहाँ जाय,—हैं हैं,—इसीसे बादशाह ने दया करके—

२ मु०—उसे पकड़कर, अपने घर लाकर, ताले में बंद कर रक्खा है । उसके ऊपर सम्राट् का विशेष अनुग्रह होना ही चाहिए !

३ मु०—और उस अनुग्रह का कुछ हिस्सा राजासाहब के ऊपर भी आकर पड़ा है । एक साल भी नहीं बीतने पाया और 'राजाबहादुर' का खिताब मिल गया । अब जान पड़ता है, शीघ्र ही 'महाराजा' भी हो जायेंगे ।

राजा—हैं हैं हैं,—यह तो आप ही लोगों का अनुग्रह है !

मु०—कैसा पाजी है ! मेरी समझ में नहीं आता कि तुम लोग ( राजा की ओर इशारा करके ) इसे यहाँ आने क्यों देते हो ? इसको देखते ही मेरी तो देह जल-उठती है ।

राजा—हिः हिः हिः—

मु०—वह देखो इस तरह हँस रहा है जैसे किसी बड़े भारी मटके में से आवाज आ रही है ।—इसमें हँसने की क्या बात हुई राजा ?

२ मु०—सुना है, विधवा अपूर्व सुन्दरी है ।

१ मु०—लेकिन यह कुछ आश्चर्य-सा जान पड़ता है कि महल में लाये दो साल हो गये, पर सम्राट् ने उसका मुँह तक नहीं देखा ।

राजा—बादशाह अपने मित्र की मृत्यु से इतने दुखी हुए हैं कि उन्होंने उसकी

विधवाका मुँह न देखनेका प्रण कर लिया है।

३ मु०—सम्राट्ने विधवाके पतिकी हत्या कराकर, उसे आगरेमें लाकर, महलके भीतर पहरेमें रक्खा है उसका मुँह न देखनेके इरादेसे,—क्यों ?

२ मु०—बल्कि मैंने तो सुना है, विधवादे ही सम्राट्का मुँह न देखनेका प्रण कर रक्खा है।

१ मु०—यही संभव है। पतिकी हत्या करनेवाले पर कहीं किसी छीका अनु-राग हो सकता है ?

३ मु०—नहीं। अनु‘राग’ न होकर विशेष ‘राग’ ( क्रोध ) होनेकी संभावना ही अधिक है।

१ मु०—लेकिन फिर ‘राग’ के पहले एक ‘अनु’ के आनेमें क्या देर लगती है ? ‘राग’के पीछे जो आता है, वही तो ‘अनुराग’ है।

२ मु०—तो अभी तक यह ‘अनु’ नहीं आया। मैंने यह खबर आयशखोंके मुँहसे सुनी है और यही सच्ची है।

[ वेगसे आसफका प्रवेश ]

आसफ—एक खबर सुनी है ?

सब—क्या ? क्या ?

आसफ—शाहजादा खुसरूने दिल्लीको घेरा था, पर उसमें वे सफल न हुए और लाहौरकी तरफ भाग गये। सेना लेकर फरीदने उनका पीछा किया। उसके बाद अब खबर आई है कि शाहजादा पकड़ लिये गये।

१ मु०—हाँ !

२ मु०—कब ?

३ मु०—कहाँ ?

४ मु०—किसने कहा है ?

( सब लोग आसफको चारों ओरसे घेर लेते हैं । )

[ धीरे-धीरे आयशका प्रवेश ]

१ मु०—वह तो, आसफके पिता भी आ गये !

२ मु०—जनाब, शाहजादा खुसरू पकड़ लिये गये ?

आयश—हाँ शेखजी !

३ मु०—तो यह खबर ठीक है ?

आयश—बिलकुल ठीक है । बेचारा शाहजादा ! इस आदमियों ने पहले उसे नचाया और ऐन मौकेपर वे सब खिसक गये ।

४ मु०—समाप्त अपने बेटेको ज़मा जरूर कर देंगे ।

आयश—नहीं, यह बात सहज नहीं है । मैं जानता हूँ ।

राजा—बादशाह सलामत बहुत ठीक इन्साफ करते हैं, ज़रा भी पक्षपात नहीं करते हैं । दोषीको दण्ड और धार्मिकको पुरस्कार देनेमें हमारे बादशाह,—हैं हैं—

आयश—( राजाकी तरफ़ रूखी दृष्टिसे देखकर ) राजा, इतनी देर हो गई, आप अभीतक सम्राट्के पास नहीं गये ?

राजा—जा ही तो रहा था, राहमें इन लोगोंके साथ दो बातें,—हैं हैं—

आयश—आपकी बातें सुनकर ये लोग अच्छी तरह निहाल हो गये । अब आप सम्राट्के पास जा सकते हैं ।

( राजा सिर खुजाते हुए चले जाते हैं )

४ मु०—वह देखो, किस तरह कुत्तेकी तरह दुम हिलाता चला गया ।  
( तीसरे मुसाहबसे ) देखा ?

३ मु०—देखा, वह शीघ्र ही 'महाराजा' होगा ।

४ मु०—क्यों ?

१ मु०—जो लोग कुत्तेकी तरह दुम हिलानेकी विद्या जानते हैं, वे एक न एक दिन 'महाराजा' अवश्य हो जाते हैं ।

( तीसरा मुसाहब सिर हिलाकर अपनी सम्मति जताता है । )

१ मु०—शास्त्रमें यह बात लिखी है ।

४ मु०—चलो, हम लोग भी चलें । दरबारका वक्त टला जा रहा है ।

( आयश और आसफ़के सिवा सब चले जाते हैं । )

आयश—( धीरेसे ) आसफ़ !

आसफ़—अच्छा ।

आयश—सम्राट्ने मुझे फिर बुला भेजा था । उन्होंने मुझे बहुत-सा प्रलो-

अन दिखाकर कहा, अगर तुम अपनी बेटीको राजी कर सको तो मैं तुम्हें मन्त्री बना दूँगा ।

आसफ—आपने क्या जवाब दिया ?

आयश—मैंने कहा, जहाँपनाहकी अनुमति हो तो मैं खजाञ्चीके कामसे इस्तीफा दे दूँ ।

आसफ—तब समाप्त क्या कहा ?

आयश—नाराज होकर कहा,—अच्छा, देखा जायगा ।—आसफ, मैं यह पद छोड़नेके लिए तैयार हूँ । तुम भी आगगा छोड़नेके लिए तैयार हो जाओ ।

### दूसरा दृश्य

स्थान—जहाँगीरका दरबार

समय—प्रातःकाल

[ जहाँगीर और उसके खजांची आयश खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं । कुछ दूरीपर सम्राट्के दूसरे पुत्र परवेज, तीसरे शाहजहाँ और छोटे पुत्र शहरार खड़े हैं । ]

जहाँ०—जानता हूँ, आयश, सब घरके खेद हुए कुत्ते हैं । उन्हें मैंने घूस लेने-पर, अत्याचार करनेपर, बुरे आचरणोंपर नाराज होकर उनके सूबोंसे अलग कर दिया था—उनकी सबी हुई समझकी बदवृत्ति व्याकुल होकर उन्हें दूर कर दिया था । इसीसे उन्होंने यह विद्रोह किया था । किन्तु, अभी उनकी सजाका अन्त नहीं हुआ है । मैं इन साजिश करनेवालोंके नामोंकी फेहरिस्त चाहता हूँ । पूरी सजा अभी नहीं दी गई ।—वह लो खुसरू आ गया—

[ पहरेदारोंके बीच कैदीकी हालतमें खुसरूको लेकर महाबतखाना प्रवेश ।

जंजीरमें बंधे हुए खुसरू सिर झुकाकर जहाँगीरके सामने खड़े होते हैं ।

जहाँगीर कुछ देर तक उनके चेहरेकी तरफ देखते हैं । ]

जहाँ०—खुसरू, जानते हो तुम किस अपराधमें पकड़े गये हो ?

खुसरू—जानता हूँ ।

जहाँ०—मैंने तुम्हें चिताकर सावधान कर दिया था ।

खुसरू—जानता हूँ अब्बा !

जहाँ०—अपराध स्वीकार करते हो ?

खुसरू—करता हूँ ।

आयश—जहाँपनाह, शाहजादेकी उम्र अभी थोड़ी है । कुछ आदमियोंने ही इन्हें भड़का दिया था ।

जहाँ०—मैं उन्हीं लोगोंके नाम जानना चाहता हूँ । खुसरू, बतला दो कि वे लोग कौन हैं ? जवाब दो, चुप हो रहनेसे मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । उन्हें आगके कुंडमें डालूँगा । उन्हें शेरको खिलाऊँगा । बताओ, वे कौन हैं ?

खुसरू—अब्बा, मैं उनके नाम नहीं बताऊँगा ।

जहाँ०—नहीं बतावेगा ?—कुलांगार, तुम्हें बताना पड़ेगा । मैं तुम्हें कहलाऊँगा । मैं तुम्हें यन्त्रणाके यन्त्रपर चढ़ाऊँगा । कोड़ोंकी मारसे तेरी पीठकी खाल खिचवा लूँगा । अगर तू सोचता है कि मैं अपना पुत्र समझकर तुम्हें माफ कर दूँगा तो तू मुझे नहीं पहचानता !—अब भी उनके नाम बता दे ।

खुसरू—मुझे जो चाहे सजा दीजिए । उनके नाम मेरी ज़बानसे नहीं निकल सकते । जो जी चाहे, कीजिए ।

जहाँ०—जो जी चाहे करूँ ? अच्छा तो वही सही । पहरेदार, इसे कैदखानेमें ले जा ।—अब्दुल, देखो, इसके हाथ-पैर लोहेके खम्भेसे बाँधकर इसे दिनभर खड़ा रखो । पीठपर कोई मारो ।—खुसरू, मैं तुम्हारे साहसको और तुम्हारी सहनशीलताको जानता हूँ । जाओ, ले जाओ ।—क्या, रो रहे हो ? उनके नाम बताओगे ?

खुसरू—नहीं ।

जहाँ०—ले जाओ ।

( सिपाही खुसरूको ले जानेके लिए उद्यत होते हैं । )

महाबतख़ाँ—(आगे बढ़कर) जहाँपनाह, मेरी एक अर्ज है । (सिपाहियोंसे) ठहरो ।

जहाँ०—क्या चाहते हो महाबतख़ाँ ?

महा०—आज तक मैंने जहाँपनाहकी आज्ञाका प्रतिवाद नहीं किया,—आज करता हूँ । उसे अनुग्रह करके सुन लीजिए और फिर चाहे जो आज्ञा दीजिए ।

जहाँ०—( कुछ सोचकर ) अच्छा कहो, जिसमें कोई यह न कह सके कि जहाँगीरने अच्छी तरह विचार किये बिना ही दराड दे दिया ।

महा०—जहाँपनाह, यह सच है कि शाहजादा खुसरूने बड़ा भारी अपराध किया

है। परन्तु इन्हें अबकी बार माफ कर दीजिए और अगर सजा ही देनी है तो शाह-जादेके लायक सजा दीजिए, साधारण अपराधीकी तरह नहीं।

जहाँ०—शाहजादा होनेके कारण वाजिब सजा न देंगा ? मैंने पहले क्या कभी इस तरहका पक्षपातपूर्ण न्याय किया है महाबतखॉ ?

महा०—यह पक्षपातपूर्ण न्याय नहीं है। पदवीकी एक मर्यादा होती है। जहाँ-पनाहने भी एक दिन स्वर्गीय महात्मा अकबरके विरुद्ध विद्रोह किया था। वह भी अगर आपको ऐसे सजा देते—

जहाँ०—उनका न्याय-विचार मेरी तरह समदर्शी न था।

महा०—नहीं खुदावन्द, वे पदवीकी मर्यादा समझते थे। आज जो हिन्दुस्तान जहाँपनाहको हिन्दुस्तानका शाहशाह कहकर सलाम करता है, सो भी उन्हीं महात्माके इन्साफका फल है। वे चाहते तो आज शायद ये शाहजादा खुर्रु ही यहाँके बादशाह होते, और शायद इन्हींके आगे जहाँपनाहका इन्साफ होता।

जहाँ०—( क्रोधके स्वरमें ) महाबत !

महा०—जहाँपनाह, सेनापति महाबतखॉ लङ्गेमें जैसा योद्धा है, बातचीतमें वैसा होशियार नहीं है। माफ कीजिएगा जहाँपनाह, लेकिन शाहजादा खुर्रुके लिए मैं फिर भी जहाँपनाहसे कृपाकी भीख माँगता हूँ। इन्हें कुछ शरारती लोगोंने मिलकर भड़का दिया था। नहीं तो इनका चरित्र बड़े ऊँचे दर्जेका है !

जहाँ०—बड़े ऊँचे दर्जेका है !

आयश—विचार करके देखिए खुदावन्द, जब इन्हें साजिश करनेवाले जहाँपनाहकी हत्या करनेके लिए उत्तेजित कर रहे थे, तब इन्होंने उस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया था। और आज यह उन्हीं कायर साजिश करनेवालोंके नाम न बताकर उनको जो सजा मिलनी चाहिए सो अपने ही सिर लिये लेते हैं, इससे भी इनका महत्त्व ही प्रकट होता है।

जहाँ०—किन्तु उनके नाम जाननेकी मुझे जरूरत है।

आयश—उनके नामोंका पता लगानेका काम मेरे जिम्मे रहा।

जहाँ०—अच्छा सिपाहियो, शाहजादेको कैदखानेमें ले जाओ। सजाके बारेमें फिर सोचा जायगा।

( खुर्रुको लेकर पहरेदारोंका प्रस्थान )

जहाँ०—परवेज, तुम मेवाड़के युद्धमें हार आये । मुझे मालूम न था कि तुम इतने निकम्मे हो । महाबतखॉ, अबकी तुम मेवाड़पर चढ़ाई करो, और परवेज, तुम महाबतखॉके साथ जाओ । युद्ध किसे कहते हैं, जाकर सीखो ।

परवेज—जो हुकम अम्बा ।

जहाँ०—और खुर्रम, अबकी तुम्हें दक्खनके युद्धमें जाना होगा, जानते हो ?

खुर्रम—जानता हूँ अम्बा !

जहाँ०—शहरयार, तुम यहाँ कहाँ !—हकीम आये थे ?

शहर०—आये थे ।

जहाँ०—क्या कह गये ?

शहर०—दवा दे गये हैं ।

जहाँ०—अच्छा, वहीं जाकर खाओ । यहाँ क्यों आये हो ? अन्तःपुरमें जाओ ।

[ दूसरी ओरसे महाबतखॉ और अन्यान्य सभासद जाते हैं ।

परवेज, शाहजहाँ ( खुर्रम ) और शहरयार रह जाते हैं । ]

शाह०—सच बात है । भाई, तुम मेवाड़में क्या उलटी तलवार लेकर लड़े थे ?

परवेज—युद्ध जैसे किया जाता था, वैसे ही किया था । लेकिन वह देश अप्रिचित था । फिर जिस दिन युद्ध हुआ, उस दिन हम युद्धके लिए तैयार नहीं थे ।

शाह०—तुम शायद तमाखू पी रहे थे ।

परवेज—तुम्हारा खयाल ठीक है खुर्रम, तमाखू ही पी रहा था । आगरेसे एक पेटी तमाखूकी ले गया था ।

शाह०—भाई, तुमने यही भूल की । तमाखू, तकिया और औरत,—ये तीन चीजें कभी युद्धके मैदानमें न ले जानी चाहिए । आराम और युद्ध तेल और पानीकी तरह बिलकुल मेल नहीं खाते ।

शहर०—आश्चर्य है ! तुम लोगोंके पास क्या युद्धके सिवा और कोई बात ही नहीं है ? यह जगत् क्या एक हत्या-शाला है ? पृथ्वी कैसी दरी-भरी है, पक्षियोंके झोल सुनो, नदीके जलका कलरव सुनो । इस सम्पूर्ण विश्वकी सुषमाका हृदयसे अनुभव करो ।—

शाह०—शहरयार, बुराई जितनी ढँकी रहे, उतनी ही अच्छी । इसी तरह तुम जितना कम बोलो, उतना ही अच्छा । तुम चुप रहो ।

शहर०—तुम्हीं-ऐसे लोगोने मिलकर ही तो ऐसे सुन्दर जगत्को कुत्तिसत बना रक्खा है । ( प्रस्थान )

परवेज़—शहरवार पुरा-पूरा कवि है । बीमारीमें पलंगपर पड़े-पड़े इसी तरह एकदम आकाशकी ओर ताका करता है, नदीकी तरफ देखा करता है । उस समय अगर कोई उसका सिर भी काट डाले तो उसे खबर न हो !

### तीसरा दृश्य

स्थान—आगरेके महलमें नूरजहाँका कमरा

समय—दोपहरसे पहले

[ नूरजहाँ अकेली पुस्तक पढ़ रही है । ]

नूर०—ना, अब अच्छा नहीं लगता । ( पुस्तक रखकर आईनेमें अपना चेहरा देखते-देखते अलकावली सँभालते-सँभालते ) इसी चेहरेके लिए इतना हुआ !—हाय मेरे उदार स्वामी ! इसी रूपने तुम्हारी जान ले ली ! इस रूपने या मेरे कठिन अकृतज्ञ हृदयने ? ईश्वर ! ईश्वर ! क्यों मैं कभी उन्हें प्यार नहीं कर सकी ? उनसे बढ़कर प्यार करनेका पात्र और कौन था ? देवोंके जैसा शरीर, सिंहके जैसा पराक्रम, माताके जैसा स्नेह, बच्चोंके जैसा भोलापन था !—तो भी तुम्हें प्यार नहीं कर सकी ! ईश्वर जानते हैं,—तुम्हें प्यार करनेके लिए मैंने अपने हृदयके साथ कितना युद्ध किया है, तो भी प्यार नहीं कर सकी । इसीसे तुमने बहुत ही खीझकर अपनी खुशीसे मौतको बुला लिया । मेरी उबक आशाने ही तुम्हारा सर्वनाश किया, साथ ही मेरा भी सर्वनाश किया !—नहीं, तो भी युद्ध करूँगी । इस शैतानीका दमन करूँगी । यह शैतानी तुम्हारे मरनेके बाद मुझे महलमें जरूर खींच लाई है ; लेकिन मैंने भी, आज चार साल बीत गये, बादशाहका मुँह नहीं देखा ; देखूँगी भी नहीं । देखूँ, कौन जीतता है ?—स्वामी ! तुम मरे हो मेरे कारण, मैं भी तुम्हारे ही लिए मरूँगी । तुम मरे हो औरोंसे युद्ध करके, मैं मरूँगी अपने ही साथ युद्ध करके । तुम मरे हो दम-भरमें, मैं मरूँगी तिल-तिल करके । तुम गये हो और मेरे लिए रख गये हो एक जीवित समाधि !—वह लैला जा रही है ? पुकारूँ ?—लैला, लैला !

लैला—( भीतर आकर ) क्या है अम्मी ?

नूर०—लैला, मेरी छातीसे लग जा । लैला ! मेरी सर्वस्व !

लैला—क्या हुआ है अम्मी ?

नूर०—लैला, तेरा चेहरा दिन-रात उदाम क्यों बना रहता है ? नज़्म नीचे किये रहती है । तेरा यह दीन वेष क्यों है ?

लैला—क्यों ? जानती नहीं हो ?—अम्मी, तुम यहाँ आई क्यों ?

नूर०—नहीं तो क्या कर सकती थी !

लैला—विष खा सकती थीं ! माँ, जीवनका इतना मोह है ? जिस पाजीने मेरे पिताको मरवा डाला उसी नीच, कायर, अधम जल्लादके महलमें—

नूर०—चुप, चुप !

लैला—चुप ?—मैं इस बातको दिन-रात अपने हृदयकी तहमें दबाये रक्खूंगी ? तुमने यही सोच रक्खा है ? नहीं, मैं सारे हिन्दुस्तानमें इस बातका ढिंढोरा पीदूंगी कि बादशाहने गुराहे लगाकर मेरे बापकी हत्या कराई ! मैं यह बात कहूंगी, कहूंगी !—जबतक मेरा तालु सूख न जायगा; जबतक सारे वायुमण्डलमें यह उच्चारण छा न जायगा, जबतक उस कलंककी कालिमासे सारा आकाश काला न पड़ जायगा, तबतक कहूंगी । यह बात मैं भरे दरबारमें तबतक कहूंगी जबतक कि बादशाह लज्जाके मारे सिंहासन समेत धरतीमें धँस न जायगा ! एक बार मौका-भर मिल जाय ।

नूर०—बेटी, अगर तू महलके भीतर इस तरह चिल्लाती फिरेगी, तो, मैंने पति तो खोया ही है, कन्याको भी खो बैदूंगी !

लैला—क्या बादशाह मेरी भी हत्या करेगा ? करे । मैं डरती नहीं हूँ । मुझे जुम्हारी तरह जान प्यारी नहीं है । हा, धिक्कार है ।—चलो अम्मी, यहाँसे हम चल दें ।

नूर०—आज्ञा नहीं है लैला !

लैला—आज्ञा नहीं है ? हम क्या कैदी हैं ?

नूर०—हाँ, बेटी !

लैला—किस अपराधमें ?

नूर०—मालूम नहीं ।

लैला—( कुछ देर चुप रहकर धीरे-धीरे ) अम्मी, तुम मुझसे कहती हो कि तुम यहाँ अपनी इच्छासे नहीं आई । लेकिन कहाँ ! आते समय तो तुमने कुछ विशेष

आपत्ति नहीं की । चुपचाप पत्नी हुई हरिणीकी तरह इस महलके भीतर चली आई । तुम कहती हो, हम कैदी हैं । लेकिन इस कैदखानेसे निकलनेके लिए तुममें कोई चेष्टा या आग्रह तो नहीं देख पड़ता ! भिक्षुककी तरह इस विशाल अन्तःपुरके गन्दे, बुरे, कुटीरमें पड़ी हो—बड़ी खुशीसे !—माँ, सच कहो, तुम यहाँसे जाना चाहती हो ?

नूर०—चाहती हूँ ।

लैला—तो बेगमके द्वारा बादशाहकी अनुमति माँग भेजो ।

नूर०—सम्राट् अनुमति नहीं देंगे ।

लैला—( जमीनपर पैर पटककर ) देंगे, मैं कहती हूँ, देंगे । क्या तुमने कभी सीधी तरहसे आग्रहके साथ अनुमति माँगी है अम्मी ? अनुमति माँगो, माँगोगी ?

नूर०—माँगूंगी ।

लैला—अच्छा, तो अनुमति प्राप्त करनेकी जिम्मेदारी मैं अपने सिर लेती हूँ ।—देखूँ, वह कैसे नहीं मिलती । ( प्रस्थान )

नूर०—ओः, कैसी लज्जाकी बात है ! तो क्या भाग चलूँ ?—भाग जाना ही ठीक है । बस, अब नहीं । लैलाकी कोमल मगर तीखी फिड़कियोंकी चोटसे मुझे अपने अन्तःकरणके बुरे घावका पता लग गया है । यह भी समझमें आ गया है कि यह घाव कैसा घृणित है । नहीं, मैं भागूंगी । और किसी बातके लिए चाहे न हो, तेरे लिए भागूंगी लैला ! मैं तेरे निकट भी अविश्वास-पात्र नहीं बनूंगी । ( स्वर धीमा करके ) अभागिनी बेटी मेरी ! उस दिनके बाद मैंने उसके मुखपर हँसीकी रेखा देखी ही नहीं । कभी-कभी वह बहुत देरतक बैठी सोचा करती है । फिर ऐसी एक लम्बी साँस छोड़ती है कि उसके साथ जैसे उसकी आधी जान निकल जाती हो । कभी-कभी मेरी तरफ टकटकी बाँधकर ताका करती है; फिर एकाएक दोनों आँखोंमें आँसु भर लाती है और उसी अवस्थामें मुँह फेरकर चली जाती है । कभी अस्पष्ट स्वरमें आप-ही-आप न जाने क्या कहती है,—इस तरहकी आकृति बनाती है जिससे घृणा, क्रोध और निराशा झलकती है । लो, वह शहनाईका बजना शुरू हो गया । कैसा विशाल यह महल है ! नहीं, अब नहीं । यहाँसे चला जाना ही ठीक है ।

[ खदीजाका प्रवेश ]

खदीजा—बुआ, बहन कहाँ है ?

नूर०—मालूम नहीं । तू यहाँ कब आई खदीजा ?

खदी०—अभी थोड़ी ही देर हुई ।

नूर०—किसके साथ आई है ?

खदी०—अम्मीके साथ ।

नूर०—वे कहाँ हैं ?

खदी०—सम्राज्ञीके पास । मैं जाऊँ, देखूँ लेला कहाँ गई । तुम आओगी बुआ ?

नूर०—ना ।

खदी०—तो मैं जाती हूँ । ( प्रस्थान )

नूर०—यह मेरी भतीजी अनुपम सुन्दरी है, इसीसे भावज इसे लेकर महलकी अविवाहित कुमार-मण्डलीमें आती-जाती रहती हैं । हाय नारी ! तेरी जाति ऐसी अधम है ! तेरा यह रूप क्या मञ्जुली, पकड़नेके काँटेकी तरह केवल मर्दोंको फँसानेके ही लिए बना है ? यह क्या केवल मर्दोंको फँसानेके ही फंदा है ? और हाय रे अधम पुरुष ! तू अपने इतने बहुमूल्य शौर्य, बुद्धि, विवेक आदि रत्नोंको अनायास ही रमणीके निन्दनीय रूपके पैरोंपर अर्पित कर देता है ! ( लम्बी साँस लेकर ) सर्वश्रेष्ठ पुरुष-जातिकी यह दशा !

## चौथा दृश्य

स्थान—महलका अन्तःपुर

समय—सन्ध्या

[ जहाँगीर और रेवा साथ खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं ]

जहाँ०—रेवा, तुम तो सब जानती हो ।

रेवा—जानती हूँ—हा ईश्वर ! अगर मैं न जानती ।

जहाँ०—जो पागल है, उसके दोषोंका फैसला कुछ अनुकम्पाके साथ किया जाता है । उस समय मैं पागल हो रहा था ।

रेवा—फैसला करनेवाले तुम कौन और मैं कौन ? जो फैसला या न्याय-विचार करने वाले हैं ( ऊपरको हाथ उठाकर ), वे करेंगे । मैं उस पापके लिए तुम्हारा तिरस्कार करने नहीं आई जो हो चुका है । मैं तो उसके लिए आई हूँ जिससे आगे भी तुम्हारा मंगल हो । सुनो ।

जहाँ०—कहो ।

रेवा—शेरखाँकी विधवाको कैदसे छोड़ दो ।

जहाँ०—मैंने उसे कैदमें नहीं, महलमें लाकर रक्खा है,—केवल इसी आशासे कि किसी दिन वह अपनी इच्छासे मेरे साथ ब्याह कर लेगी ।

रेवा—मेहरुजिसा अगर ब्याह करनेको राजी होती तो मैं खुद ही यह ब्याह करा देती । लेकिन चार साल वीत जानेपर भी जब वह ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई तब उसकी इच्छाके विरुद्ध उसे महलमें कैद कर रखना घोर अन्याय है ।

जहाँ०—एक बार क्या उससे मुलाकात भी नहीं कर सकता ?

रेवा—नहीं, उसकी मर्जीके खिलाफ नहीं ।

जहाँ०—रेवा, तुम्हारे ही अनुरोधसे अबतक मैंने शेरखाँकी विधवासे मुलाकात नहीं की,—हालाँकि मैं कभी-कभी उससे मिलनेके लिए पागल-सा हो गया हूँ ।

रेवा—यही तो मनुष्यका काम है ! मनुष्य यदि सदा प्रवृत्तिके ही अधीन बना रहे, तो उसमें और पशुमें अन्तर ही क्या रह जाय ?

जहाँ०—मेहरुजिसा बर्दवानको लौट जाना चाहती है ?

रेवा—हाँ स्वामी ! मैं हाथ जोड़कर अनुरोध करती हूँ, तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ।

जहाँ०—अगर तुम जानती, अगर तुम समझ सकती—

रेवा—जानती हूँ और समझती हूँ, तो भी मेरे जीते जी इस महलमें एक कुल-कामिनीका अपमान न होगा, और इससे मैं यथाशक्ति तुम्हारी रक्षा करूँगी ।

जहाँ०—रेवा, मैं देवीकी तरह तुमपर भक्ति रखता हूँ, तथापि—

[ लैलाका प्रवेश ]

लैला—तथापि ? कहिए सम्राट्, तथापि ?—

( जहाँगीर चुप हो रहते हैं )

लैला—सम्राट्, मैं शेरखाँकी लड़की हूँ । मैं जानना चाहती हूँ कि किस अपराधसे आपने मेरी माताको उनकी मर्जीके खिलाफ जन्म-भरके लिए कैद कर रक्खा है ?—किस साहससे सम्राट् शेरखाँके परिवारके ऊपर अत्याचारोंके ऊपर अत्याचार कर रहे हैं ? ऊपर क्या ईश्वर नहीं है ? पृथ्वीपरसे क्या धर्म एकदम उठ गया ?

रेवा—स्वामी, मैं तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ, मेहरुनिसाको छोड़ दो ।

जहाँ०—( लैलाकी तरफ देखकर और चार आँखें होते ही नजर नीची करके ) अच्छा तो वही हो । विधवासे कह दो, वह अपनी कन्यासहित बर्दवानको लौट जा सकती है ।

लैला—सम्राट्की जय हो !

रेवा—यही तो भर्दका काम है ! मैं जानती हूँ नाथ, कि इस विधवाके ऊपर तुम्हारा कितना अनुराग है । इसी कारण तुम्हारा यह मानसिक बल मुझे इतने गौर-वकी यात जान पड़ता है ।—स्वामी, कर्तव्य-निष्ठाके ख्यालसे इस निष्फल अनुरागको भूलनेकी चेष्टा करो ! ( प्रस्थान )

जहाँ०—मैं क्या इतना अधम और अपदार्थ हूँ कि यह साधारण स्त्री मेरा कहा न माने ! इसको बड़ा घमंड है ! एक दिन मैंने सोचा था कि यह स्त्री सचमुच मुझे प्यार करती है,—हमारे मिलनेमें यदि कोई बाधा है तो केवल शेरखॉ है ! सो वह क्या मेरा भ्रम ही था ? एक बार अगर उससे मुलाकात कर पाता ! ( सिर झुकाये हुए टहलना ) अच्छा एक बार अन्तिम चेष्टा करके देखूँ ।—पहरेदार !

नेपथ्यमें—खुदावन्द !

जहाँ०—आयशखॉके लड़के आसफको हाजिर करो ।

पहरेदार—जो हुकम खुदावन्द !

( प्रस्थान )

जहाँ०—एक बार आसफसे कहकर देखूँ । इतना परिश्रम किया, इतना कुचक रचा, और जब वह मेरी मुट्ठीमें आ गई, तब क्या उसे यों ही छोड़ दूँ ?—कभी नहीं । एक बार अपनी पूरी ताकत लगाकर अन्तिम चेष्टा कर देखूँगा । यों सहजमें न छोड़ूँगा ।

## पाँचवाँ दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा ।

समय—रात

[ नूरजहाँ अकेली टहल रही है । ]

नूर०—आखिर मेरी अर्जी मंजूर हो गई । मैं अब कहाँ जाऊँ ? पिताके पास ?

या बर्दवानको ? वहाँ मेरा कौन है ? नहीं है, न सही; मैं जाऊँगी। मैंने जो कारी-गरीके काम सीखे हैं उन्हींसे अपना गुजर कर लूँगी, अपना साधारण खर्च चला लूँगी। मैं जाऊँगी। यहाँसे जितनी ही दूर हो जाऊँ, उतना ही अच्छा। मैं बर्दवान लौट जाकर अपने स्वामीके चरणोंमें मन लगाये हुए मरूँगी और इस शैतानी प्रवृत्ति-का दमन करूँगी।

[ दासीका प्रवेश ]

दासी—सम्राज्ञी आ रही हैं, जनाब !

नूर०—अच्छी बात है।

( दासीका प्रस्थान )

( नूरजहाँ उठकर जल्दीसे अपनी पोशाक ठीक कर लेती है। रेवाका प्रवेश। नूरजहाँ बंदगी करती है। रेवा भी उसके जवाबमें बंदगी करती है। )

रेवा—मेहरबानसा, तुम्हें एक अच्छी खबर देने आई हूँ।

नूर०—सुन चुकी हूँ सम्राज्ञी, मेरी अर्जी मंजूर हो गई है।

रेवा—हाँ, मेहर, तुम कल सबेरे कन्याको लेकर जहाँ चाहो वहाँ जा सकती हो।

नूर०—मैं नहीं जानती कि इसके लिए सम्राज्ञीके निकट मैं अपनी कृतज्ञता किस तरह प्रकट करूँ। आपने मुझपर बड़ा एहसान किया।

रेवा—मगर मैं तुम्हें एक बात जता देना उचित समझती हूँ।—तुम सम्राज्ञी होना चाहती हो ?

नूर०—बेगम साहबा, माफ कीजिएगा। मैं कुछ नहीं होना चाहती। मैं केवल बर्दवानको लौट जाना चाहती हूँ।

रेवा—मैं यही पूछ रही थी कि तुम चाहती हो या नहीं। सुनो मेहर, तुम इच्छा करनेसे सम्राज्ञी हो सकती हो। ऐसी-वैसी सम्राज्ञी नहीं,—प्रधान बेगम, भारतकी अधीश्वरी; जो सम्मान आज मुझे प्राप्त है वही। सम्राट् तुमपर जिस तरह दस साल पहले मुग्ध थे, आज भी, वैसीही—बल्कि उससे भी अधिक, मुग्ध हैं। वे और यह साम्राज्य तुम्हारी मुट्ठीके भीतर हैं। चाहो तो मुट्ठीमें रख सकती हो और चाहो तो फेंक दे सकती हो।—क्या सोच रही हो मेहर ?

नूर०—सोच रही थी सम्राज्ञी,—माफ कीजिएगा,—सोच रही थी कि अपने

साम्राज्य-सुख और स्वामीको आप इस तरह लापवाही या खुशीके साथ दूसरेको दे डाल सकती हैं !

रेवा—( कुछ मुसकराकर ) मैं हिन्दू-जातिकी लड़की हूँ । हमारी जातिने दूसरों-को बाँटनेहीके लिए जन्म लिया है । भला बताओ, क्या यह भारतवर्ष भी हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें नहीं दे दिया है ? हमारी आशा यहाँ नहीं है मेहर,—हमारी आशा और भरोसा ( ऊपरकी ओर देखकर ) वहाँ है ।

नूर०—नहीं सम्राज्ञी, मैं सम्राज्ञी नहीं होना चाहती ।

रेवा—अच्छी बात है । मैं किसी बातके लिए जोर नहीं देती । केवल खबर देने आई थी । रात हो गई है । अब मैं जाती हूँ । ( प्रस्थान )

नूर०—भारतकी अधीश्वरी ! ( कुछ देर टहलते-टहलते सिर हिलाकर ) नहीं, यह बात सोचना भी पाप है ।—लेकिन मेरे भविष्यमें क्या निष्फल रोनेको छोड़कर और कुछ नहीं है ?—ना, इस बारेमें अब मैं नहीं सोचूंगी ।—ओः, बड़ी गर्मी है ! ( खिड़कीके पास जाकर पट खोल देती है । फिर आकर आप-ही आप कहती है—) मनुष्यके हृदयके भीतर क्या दाँ जीव हैं ? नहीं तो इतने दिनोंसे यह युद्ध किसके साथ चल रहा है ?—उः, कैसी गर्मी है !—नहीं, मैं यह कभी न करूँगी । अबकी मैंने अपने हृदयको दृढ़ कर लिया है । मुझे इस संकल्पसे कोई विचलित न कर सकेगा । इस बारेमें मुझपर मेरी कन्याका और मेरे भरे हुए स्वामीके सम्मान का ऋण है ।— ऐसा कभी न करूँगी ।

[ दासीका प्रवेश ]

दासी—आपके भाई साहब आपसे मिलना चाहते हैं ।

नूर०—कौन, आसफ ?

दासी—हाँ जनाब !

नूर०—अच्छा, ले आओ । ( दासीका प्रस्थान )

नूर०—इस समय आसफ क्यों आये हैं ?

[ आसफका प्रवेश ]

नूर०—क्या खबर है ? इस समय तुम एकाएक कैसे आये ?

आसफ—अच्छी खबर है । मैं अच्छी ही खबर लाता हूँ ।

नूर०—क्या खबर

आसफ—कहता हूँ, ठहरो, जरा दम ले लेने दो ।

( नूरजहाँ चुपचाप उसकी तरफ ताकती है । )

नूर०—( कुछ देर बाद ) अब कहो क्या खबर है ?

आसफ—खबर सुनोगी ? तुम । सम्राट् तुमसे एक दफा भेंट करना चाहते हैं ।

नूर०—भेंट करना चाहते हैं ? मतलब ?

आसफ—मतलब क्या तुम नहीं जानतीं मेहर ?

नूर०—हाँ, अनुमान कर सकती हूँ । अगर वही मतलब है तो उनसे मेरा सलाम करके कहना कि उस सम्मानका बोझ मैं नहीं उठा सकती ।

आसफ—क्या तुम यहाँसे जानेके पहले उनसे एक बार मिलना भी नहीं चाहती ?

नूर०—नहीं ।

आसफ—मेहर, तुम्हारे इस अद्भुत गैवारपनके बारेमें मैं क्या कहूँ ! आज शेरखँको मरे चार साल हो गये । मुसलमानी शरहसे विधवा-विवाह मना नहीं है । चार सालका समय बीत गया;—दिनोंके बाद दिन लहरोंकी तरह गुजरते चले जाते हैं, तो भी तुम्हारी याद सम्राट्के मनमें पत्थरकी लक़ीरकी तरह दृढ़, अटल और अक्षुण्ण बनी हुई है । फिर भी तुम—

नूर०—आसफ, मेरी याद सम्राट्के हृदयमें जितने उज्ज्वल भावसे अंकित है, अपने स्वामीकी स्मृति भी मेरे हृदयमें वैसी ही बनी हुई है ।

आसफ—लेकिन तुम अपने स्वामीको तो अब पा नहीं सकतीं । फिर यह कैसी नादानि है, कुछ समझमें नहीं आता ।

नूर०—तुम नहीं समझ सकोगे । यह विरोध, यह पछतावा, यह शोक, यह जीकी जलन,—तुम क्या समझोगे !

आसफ—लेकिन सब काम छोड़कर केवल शोक करना ही क्या तुम्हारे जीवनके कल्याणकी साधना है ?—जब कि तुम इच्छा करनेसे ही सारे भारतकी अधीश्वरी हो सकती हो,—एक बातमें,—एक इशारेमें,—एक पलकमें—

नूर०—मैं यह नहीं चाहती ।—तुम्हारा उपदेश वृथा है । मुझे राजी न कर सकोगे । जाओ ।

आसफ—(कुछ देर चुप रहकर धीरे-धीरे) मेहर, आज तुम इस महाशम्मानको फेंके देती हो। किन्तु बादकी जब शिथिल बुढ़ापा आकर तुम्हारे ऊँचे मस्तकपर आसन जमावेगा तब तुम्हारे मनमें एक निष्फल पड़तावा होगा कि तुमने जदानीका यह कितना बड़ा सुयोग अपने हाथसे गवाँ दिया। जिस सुयोगको आज तुम लात मारकर ठुकरा रही हो, उसे तब पैरों पकड़कर भी न लौटा सकोगी।

नूर०—इन सबने एक कुचक रच रक्खा है ! ये मुझे पागल बनाये बिना न छोड़ेंगे ! ( चिल्लाकर ) तुम क्यों आये ? जाओ !

आसफ—जाता हूँ मेहर, लेकिन जाते-जाते फिर कहे जाता हूँ—तुम सोचो कि आज तुम कैसा पद, नैसी मर्यादा हाथमें पाकर छोड़े देती हो और इच्छा करते ही क्या हो सकती हो। आज इसी जगह, इसी घड़ी ठीक हो जायगा कि तुम बाहर उतारी हुई जूतीकी तरह पड़ी रहोगी या शाही महलके कमरेके बेन्द्रमें ऊपर भूलते हुए भाड़की तरह प्रकाश डालोगी ? राहकी कंगालिनी होना और भारतकी अभीश्वरी बनना, इन दोनोंमें एक बात पसन्द कर लेना क्या इतना कठिन है ?

नूर०—कुछ कठिन नहीं है। मैंने पसन्द कर लिया है। मैं राहकी कंगालिनी ही बनूँगी।

आसफ—लेकिन मेहर, तुम्हीं अकेली राहकी कंगालिनी न बनोगी, बल्कि अपना यह सारा परिवार कंगाल बन जायगा। सम्राट्ने कहा है कि अगर तुम राजी हो जाओगी तो वे पिताको मन्त्रीका पद दे देंगे, और नहीं राजी हुई तो वे खजांची भी रहेंगे या नहीं, सन्देह है।

नूर०—( कुछ सोचकर ) जानते हो आसफ, तुम यह क्या प्रस्ताव कर रहे हो ? प्रस्ताव कर रहे हो कि मैं अपना शरीर, अपनी आत्मा, अपनी मर्यादा,—जो कुछ अपना है सब एक साम्राज्यके लिए फेंक दूँ ! जो मेरे स्वामीकी हत्या करानेवाला है, जिसके लिए केवल एक तीव्र प्रतिहिंसा खुली हुई तेज तरवारकी तरह मेरे हृदयके भीतर प्रवीण रहनी चाहिए, उसीको मैं प्रेमपूर्वक गले लगाऊँ ?

आसफ—अगर तुम बदला ही लेना चाहती हो मेहर, तो इससे बढ़कर सुयोग और कौन-सा मिल सकता है ? महलके बाहर तुम साधारण स्त्रीकी तरह पड़ी रहोगी,—तुम्हारी शक्ति ही क्या होगी ? लेकिन अगर तुम सम्राज्ञी हो गई तो हर

रोज, हर घड़ी बदला लेनेका सुयोग पाती रहोगी ! देखो मेहर, विचार करो ।

नूर०—यह सब भाग्य-चक्रका फेर है । मैं बराबर यही देखती आ रही हूँ, दूसरे एक 'भैरव' मुझे घसीट रहा है । नहीं तो हम आगरे ही क्यों आये ? नहीं तो उस दिन जहाँगीरसे चार आँखें ही क्यों हुईं ? नहीं तो मैं ऐसे स्वामीको प्यार क्यों नहीं कर सकी ? नहीं तो मैं इस महलमें आनेसे पहले विष खाकर क्यों न मर सकी ? नहीं तो पिता, तुम और स्वयं दयावती सम्राज्ञी मेरे विरुद्ध कुचक्र क्यों रचतीं ?—ओः, कैसी साजिश है ! मेरे हृदयमें जो शैतानी है उसे मैंने जीत लिया था; परन्तु, इस समय तुम सब आकर उसमें शरीक हो गये । मैं हार गई ।

आसफ—क्या कहती हो मेहर, कुछ समयमें नहीं आता ।

नूर०—नहीं, तुम नहीं समझ सकोगे ।—उसे जाने दो, अब यह कहो कि क्या तुम सब यही चाहते हो ? पिता और तुम,—सब यही चाहते हैं ?

आसफ—क्या ?

नूर०—कि मैं सम्राज्ञी होऊँ ?

आसफ—हाँ, चाहते हैं ।

नूर०—तो फिर वैसा ही हो । लेकिन सावधान आसफ, इसके बाद जो कुछ होगा उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ । याद रखो, पिंजरेमें पड़ी हुई पागल शेरनीको तुम सड़कपर छोड़े दे रहे हो । जिस तूफानको मैं हृदयकी सारी शक्ति लगाकर दबाये हुए थी, उस शक्तिको हटाकर तुम तूफानको बुला रहे हो । अब यह तूफान बिना किसी रुकावटके इस साम्राज्यके ऊपर आ पड़ेगा ।

आसफ—क्या करना चाहती हो ?

नूर०—सो अभी तक मुझे भी ठीक-ठीक मालूम नहीं । मगर हाँ, इस शैतानी शक्तिको मैं जानती हूँ । जाओ, सम्राट्से जाकर कहो, मैं उनसे ब्याह करनेको तैयार हूँ ।

( आसफका प्रस्थान )

नूर०—तो यह भारी साम्राज्य अब एक भारी भूकम्पसे काँप उठे !

# छठा दृश्य

स्थान—मदलका एक कमरा

समय—रात

[ मुसादब लोग बैठे हैं । सामने नाचनेवालियाँ हैं । ]

१ मु०—गाओ, गाओ, और गाओ । आज रात-भर जलसा मनाना होगा,—  
खुशी करनी होगी ।

२ मु०—हाँ, आज बादशाहका ब्याह है और यह कोई मामूली बात नहीं है  
साहब ! शेरखोंकी विधवाके साथ शाहंशाह जहाँगीरका ब्याह है !

३ मु०—और साथ ही साथ सम्राट्के पुत्र खुर्रमके साथ विधवाके भाई आस-  
फकी कन्याका जो ब्याह है उसे तुम जैसे कुछ समझते ही नहीं ।

२ मु०—अरे, उन सब बेकार ब्याहोंकी बात जाने दो ।

३ मु०—बेकार ब्याह ? कैसे ?

२ मु०—पहला ब्याह क्या ब्याह है ? वह तो मानों बालकका जधानी पहाड़े  
याद करना है ।

४ मु०—पहाड़े याद करना कैसा ?

२ मु०—असल हिसाब तो दूसरे ही ब्याहसे शुरू होता है । उसके बाद ब्याहों-  
की संख्या जितनी ही बढ़ती जाती है, उतना ही हिसाब-किताब भी बढ़ता जाता है ।

३ मु०—तो ब्याह ठहरा हिसाब सीखना ?

२ मु०—हाँ, बड़ा भारी हिसाब है । और वह मैंने ठगाकर सीखा है भैया !

४ मु०—सुना है, आसफकी बेटी बहुत ही सुन्दर है ।

२ मु०—सुना है क्या, देखा है ।

३ मु०—कैसी है ! कैसी है !

२ मु०—जानते हो कैसी है ? ठीक परी-जैसी है । परी तो तुमने जरूर देखी  
होगी ?

४ मु०—अर्थात् मनुष्य इतना सुन्दर नहीं होता, यही न तुम कहना चाहते  
हो ?

२ मु०—और भी अधिक बखाना चाहो, तो सुनो । उसकी दोनों आँखें कमल-

दलोंसे बड़ी, कान शंख जैसे, नाक बंसीकी तरह और चोटी नागिनकी तरह है । खूब समझ रहे हो ? रूप तुम्हारे ध्यानमें जमता जा रहा है ?

१ मु०—भरे, टीका-टिप्पणी रहने दो । वह तुम लोगोंमें तो किसीकी कही होगी ही नहीं; फिर उसका वर्णन करनेकी क्या जरूरत है ? गाओ, नाचो और मजा करो ।

[ गानेवालियों गाती हैं । ]

बिहाग तिताला

आज है नव उत्सवका रंग ।

नये रत्न-आभूषण सज दो, प्रकृति-सतीके अंग ॥ आज० ॥

पृथ्वीमें, आकाश-पवनमें, सागरमें एक संग ।

आज नई किरणोंका उज्ज्वल फैला दो शुभ रंग ॥ आज० ॥

आज पुराना सभी हटा दो, जो है मलिन कुरंग—

उसे मिटा दो, देखे सब जग नया तुम्हारा ढंग ॥ आज० ॥

श्यामल, कोमल; सोना, हीरा आदिकसे इकसंग ।

भुवन अलंकृत कर दो, भर दो सबमें नई उमंग ॥ आज० ॥

गान-तान जग उठे, बजें बहु बीना मुरज मृदंग ।

भीतर-बाहर व्याप्त विश्वमें होवे नई उमंग ॥ आज० ॥

नव आलोक-पुलकसे पृथ्वी-स्वर्गलोक इकसंग ।

कर दो विगतशोक, जगका हो आज नया ही ढंग ॥ आज० ॥

नई हँसीसे, नई वासना-उत्साहोंके संग—

जीवन-मरण बना दो उज्ज्वल, दे आशाका रंग ॥ आज० ॥

सातवाँ दृश्य

स्थान—इम्राट्का अंतःपुर

समय—सायंकाल

[ अन्तःपुरके एक कमरेके बरामदेमें लैला अकेली टहल रही है । उसके साथ शाहजादा शहरयार है । ]

शहर०—लैला, तुम्हारा यह जद और विषादसे भरा मुख, ये झुकी हुई उदास आँखें और यह काँपती हुई भरई आवाज क्यों है ? तुमको क्या दुःख है ?

लैला—आप मेरा दुःख सुनकर क्या करेंगे शाहजादा साहब ?

शहर०—अगर हो सकेगा तो उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा ।

लैला—आप ?

शहर०—लैला, मैं जानता हूँ कि मेरी ताकत कितनी कम है; जानता हूँ कि सम्राट् मुझे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं,—राज-परिवारके लोग भी अवज्ञाकी दृष्टिसे देखते हैं; तो भी चेष्टा कर सकता हूँ ।

लैला—शाहजादा, आपको सब लोग जो उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, यही तो आपका सौन्दर्य है ।

शहर०—मैं तुम्हारे कहनेका मतलब नहीं समझ सका ।

लैला—आप नहीं समझ सकते । समझनेकी वृथा चेष्टा भी न कीजिएगा ।

शहर०—तुम भी मुझे अनादरकी दृष्टिसे देखती हो ?

लैला—नहीं शाहजादा, मैं आपकी असहाय अवस्थाको, आपके शरीर और मनकी कमजोरीको, आपकी वर्तमान और भविष्यकी दीनताको बहुत ही सुन्दर देखती हूँ ।

शहर०—क्या मेरी कोई बात तुम्हें सुन्दर देख पड़ती है लैला ?

लैला—आपके आगे झूठ कहनेमें मुझे कुछ लाभ नहीं है । आप बड़े ही दीन हैं—मुझसे भी दीन हैं ।

शहर०—तुम दीन हो लैला ? तुम सम्राज्ञीकी कन्या हो, तुम सम्राट्की—

लैला—बस शाहजादा । सम्राट्के साथ मेरा नाम लेकर मुझे कलुषित न कीजिएगा । हाँ, मैं सम्राज्ञीकी कन्या अवश्य हूँ,—हाय, यह बात अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है ।

शहर०—लैला, तुम भी एक पहेली हो ।

लैला—शाहजादा, मेरा चरित्र क्या आपको ऐसा ही जटिल जान पड़ता है ?

[ दासीका प्रवेश ]

दासी—( लैलासे ) आपको बेगमसाहबाने याद किया है ।

लैला—मुझे ?

दासी—हाँ जनाब !

लैला—बेगम साहबाने !

दासी—जी हाँ, बेगम साहबाने ।

लैला—क्या मतलब है ?

दासी—मुझसे यह कुछ नहीं कहा ।

लैला—अच्छा आती हूँ, जाकर कह दे । ( दासीका प्रस्थान )

लैला—शाहजादा, मैं जानती हूँ, आप मुझसे प्रेम करते हैं । लेकिन उस प्रेम-को कम करनेकी चेष्टा कीजिए ।

शहर०—तुम मुझसे प्रेम नहीं करती ?

लैला—करती हूँ । अगर मुझे किसीसे प्रेम है तो आपसे; तो भी मैं आपके साथ ब्याह नहीं कर सकती ।

शहर०—मेरा अपराध ?

लैला—अपराध यही है कि आप जहाँगीरके बेटे हैं ।

शहर०—खुर्रम भी तो जहाँगीरके बेटे हैं ।

लैला—इससे क्या ?

शहर०—नुम्हारी बहन खदीजाने तो उसके साथ ब्याह किया है ।

लैला—खदीजा आसफखॉकी बेटी है, शेरखॉकी बेटी नहीं है ।—जाइए । आप क्यों मेरे एकान्तवासमें, मेरे दुःखमें, मेरी निराशाकी दूषित हवामें आकर अपनेको भी दुखी करते हैं ?

शहर०—तो फिर तुम और किसीसे ब्याह करोगी ?

लैला—शाहजादा, इस बारेमें आप निश्चिन्त रहिए ।

शहर०—तुम ब्याह करोगी ?

लैला०—नहीं ।

शहर०—क्यों लैला ?—इस विशाल विश्वको आँख उठाकर देखो । देखो, वह सुनहली सन्ध्या आकाशके नील-हृदयसे लगकर सोई हुई है । वह लहराता हुआ पवन हरी-भरी धरतीको गले लगा रहा है । वह भौरा सुगन्धित कलीफा मुँह

चूम रहा है ।—इस संसारमें कौन अकेला है ?

लैला—तो फिर मुझे आप इस विश्वके बाहर समझिए । मेरा दुःख, ( सहमा दोनों हथेलियाँ मलकर कण्ठ स्वरमें ) जाइए शाहजादा, जाइए, यह सब सुननेका मुझे समय नहीं है,—मेरी अवस्था भी वैसी नहीं है ।

शहर०—तुम्हें क्या दुःख है, सो मुझे जताओगी भी नहीं ?

लैला—नहीं, आप समझ नहीं सकेंगे ।—आप जाइए ।

( शहरयारका प्रस्थान )

लैला—तुम मेरा दुःख क्या समझोगे शहरयार ! पृथ्वीपर क्या कोई भी किसीका दुःख समझ सकता है ! मेरी मा,—यह कदना भी अनुचिन्तित न होगा कि मेरे पिता जिसकी पूजा करते थे, आज उसी जलनादकी स्त्री है जिने निष्ठुर भावसे मेरे पिता-को मरवा डाला था ! एक साम्राज्यके लिए, एक भूमि-खण्डके लिए, ( कहते-कहते स्वर मंग हो जाता है ) मेरी मा आज पराई हो गई ! मेरी सोनेकी मूर्तिको मेरे हृदयके मिश्र-सनपरसे डोकू उठा ले गया ! मेरा सब कुछ गया और मैं खड़ी-खड़ी अरानी और मैंने देखती रही ! आँखोंमें आँसू नहीं थे । मुखमें आर्तनाद नहीं था । चुरचाप खड़े-खड़े देखा किया !—कुछ कर नहीं सकी ! मा को बचा नहीं सकी !—बचा नहीं सकी !

( प्रस्थान )

## आठवाँ दृश्य

स्थान—सम्राज्ञी नूरजहाँका सजा हुआ महल

समय—रात

[ अमूल्य गहने पढ़ने अकेली नूरजहाँ टहल रही है । ]

नूर०—मैं आज भारतकी सम्राज्ञी हूँ । किन्तु यह मेरे लिए गौरव है या लज्जा है ! यह मेरी जय है या पराजय !—ओः, कैसी हार है ! इतने दिनोंतक युद्ध करके अन्तको मुझे शैतानी प्रवृत्तिसे हार खानी ही पड़ी ।—मैं हार गई । मैंने अपना सब कुछ गवाँ दिया । तो फिर अब भय काहेका है ? जब सम्राज्ञी हुई हूँ तो फिर सब बाधाएँ,—सब विघ्न मेरी राहसे हट जायँ ! जब विवेक खोया, तब सारी दुविधा और सारा संकोच हृदयसे दूर हो जाय । जब सम्राज्ञी हुई हूँ, तब मनमाना शासन

कहेगी !—लो, वे सम्राट् आ रहे हैं ।

[ जहाँगीरका प्रवेश । नूरजहाँका बन्दगी करना । ]

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने सम्राज्ञी होनेके लिए ही जन्म लिया था । तुम्हारी सलामत करनेकी अदा तक सम्राज्ञीके समान है ।

नूर०—सम्राज्ञी होनेके लिए जन्म लिया था, सम्राज्ञी हुई । संसारमें कोई खुद चेष्टा करके बड़ा आदमी होता है, और किसीको संसार ही चेष्टा करके बड़ा आदमी बना देता है ।

जहाँ०—हाँ, अगर वह उसके लायक आदमी हुआ तो । रत्नको ही खोजकर लोग अपनी पगड़ीमें लगाते हैं ।

नूर०—पर जिसके सिरपर वह पगड़ी रहती है, उसके कंधेके लिए उसका सिर बहुत भारी हो जाता है जहाँपनाह !

जहाँ०—नूरजहाँ, जो हो गया—

नूर०—सो हो गया । सच बात है । इसके माफिक सच बात संसारमें और कुछ नहीं है जहाँपनाह !—उस बातको जाने दीजिए, क्या मैं एक बात पूछ सकती हूँ जहाँपनाह ?

जहाँ०—क्या बात नूरजहाँ ?

नूर०—सुनती हूँ, जहाँपनाहने शाहजादा खुसरूको कैदसे रिहा कर दिया है ?

जहाँ०—हाँ प्रियतमे !

नूर०—क्या सम्राज्ञी रेवाने सम्राट्से इस बारेमें अनुरोध किया था ?

जहाँ०—हाँ,—ना,—अर्थात् उन्होंने मुँह खोलकर कुछ नहीं कहा । मगर उनके आँसू जो सारे हृदयका निषेध रहते भी उमड़ पड़ते हैं, उनकी लम्बी साँस जो भीतर रुकी हुई भापकी तरह सारे शरीरको कँपा बेती है, उनका अव्यक्त अनुनय-विनय जो अनिर्वचनीय भाषाद्वारा मुँहपर झलकता है,—इन सब बातोंने मिलकर मुझे जीत लिया । इसके सिवा खुसरू मेरा पुत्र ही तो है !

नूर०—निश्चय । मगर ( हँसकर ) जब मेरे भानजे शफीउल्लाको मौतका दण्ड दिया था तब जहाँपनाहने अपने न्याय-विचारकी,—इन्साफकी कुछ अधिक बचाई की थी ।

जहाँ०—लेकिन, वह तुम्हारी बहनका लड़का था। तुम्हारा लड़का नहीं था।

नूर०—लेकिन मेरा पोष्य-पुत्र तो था ?

जहाँ०—पोष्य-पुत्र और अपना पुत्र,—कितना अन्तर है !—नूरजहाँ; तुम नहीं जानती कि पुत्र क्या चीज है !

नूर०—नहीं जहाँपनाह, यह जाननेका सुयोग मुझे नहीं मिला।

जहाँ०—खुसरू एक तो मेरा बेटा है,—

नूर०—और फिर, सम्राज्ञी रेवाका पुत्र है।

जहाँ०—नूरजहाँ !

नूर०—जहाँपनाह !

जहाँ०—तुम स्थिर चित्तसे यह बात कहती हो ? रेवाके ऊपर भी तुम्हें डाढ़ देना है ?

नूर०—कुछ-कुछ डाढ़ भी हो सकता है।

जहाँ०—मैं इसे सम्भव नहीं समझता।

नूर०—क्यों जहाँपनाह ?

जहाँ०—डाढ़ या लाग-बाट उन्हींमें होती है जो बराबरके होते हैं; लेकिन, रेवा और तुम दोनों जुदे-जुदे जगत्की चीज हो। रेवा ऊपर ऊँचाईपर ठहरे हुए नक्षत्रकी तरह स्थिर प्रकाशमय और निष्कलंक है। और तुम उसके बहुत नीचे पूर्णचन्द्रकी तरह,—इतनी सुन्दर हो, क्योंकि इतने निकट हो !

दासी—( प्रवेश करके ) खुदाबन्द, सम्राज्ञी आपसे जरा मिलना चाहती हैं।

जहाँ०—उनकी पूजा समाप्त हो गई ?

दासी—हाँ खुदाबन्द !

जहाँ०—चल, मैं आता हूँ।

( दासीका प्रस्थान )

जहाँ०—मैं अभी आता हूँ नूरजहाँ !

( प्रस्थान )

नूर०—रेवा नक्षत्र और मैं पूर्णचन्द्र हूँ। इतना फर्क है, यह मैं नहीं जानती थी। अच्छा तो देखूँ, उस नक्षत्रकी चमक इस पूर्णचन्द्रकी प्रभासे फीकी हो जाती है कि नहीं। नूरजहाँ देखी नहीं है। वह जब हुकूमत करने बैठी है, तब हुकूमत करेगी। वह और किसीकी प्रतिद्वन्द्वता नहीं सहेगी।

[ लैलाका प्रवेश ]

लैला—( धीरेसे ) तुमने मुझे बुलाया था ?

नूर०—हाँ लैला, बुलाया था ।

लैला—मतलब ?

नूर०—मतलब है । और, लैला, क्या बिना मतलबके तुम्हें मेरे पास न आना चाहिए ?

लैला—नहीं । बिना मतलबके तुम्हारे पास न आना चाहिए ।

नूर०—( कातर दृष्टिसे लैलाकी ओर देखकर ) क्यों ?

लैला०—( स्थिर शुष्करवर्मे ) तुम्हारे साथ अब मेरा क्या सम्बन्ध रह गया है ?

नूर०—क्यों, मैं तुम्हारी मा हूँ !

लैला—सुनती अवश्य हूँ ।

नूर०—सुनती हो !—केवल सुनती हो !—यहाँ तक !

लैला—हाँ सुनती हूँ, किन्तु ठीक समझमें नहीं आता । ठीक विश्वास नहीं होता कि मेरी मा पृथ्वीके एक टुकड़ेके लिए अपनेको बेच सकती है । कभी-कभी मुझे जान पड़ता है कि शायद मेरी मा कोई और थी । वह मर गई । उसके बाद पिताने तुमसे ब्याह किया और मुझे तुम्हें 'मा' कहना सिखाया ।

नूर०—नहीं लैला, मैं अभागिन सचमुच ही तुम्हारी मा हूँ ।

लैला—होओगी ।—ओः ! लडकपनमें किसीने मुझे अफीम खिलाकर मार क्यों नहीं डाला । यदि मार डाला होता, तो यह बदनामी न सुननी पड़ती । अगर इस समय भी कोई मुझे इस पत्थरपर दे मारे !—मेरे इस शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जायें—  
ओः—मा, मैं आत्म-हत्या कर लूँगी ! अब और नहीं सहा जाता—

नूर०—( खींचकर ) क्या नहीं सहा जाता लैला ?

लैला—यही दृश्य । यह बीभत्स व्यभिचार ! यह खयाल कि मेरी माने साम्राज्यके लोभसे अपने स्वामीकी हत्या करनेवालेके साथ शायी की है । जब वह जल्लाद आकर, तुम्हारा हाथ पकड़कर, तुम्हें 'प्यारी' कहकर पुकारता है, तब,—  
क्या कहूँ,—मा, मेरे सारे अंगोंमें मानों हजारों बिच्छू डसने लगते हैं । कैसे बतलाऊँ, वह जलन कैसी है !—और वह जलन एक दिनकी नहीं, एक महीनेकी नहीं, नित्यकी

है ! आँखोंके आगे नित्य देखती हूँ कि इस पापके कारखानेमें नये-नये अविचार, अत्याचार और व्यभिचार तैयार हो रहे हैं ! ओः !—

नूर०—देखो लैला, मैं इस तरह तुम्हारा लाल-लाल आँखें दिखागा और भिड़की देना रोज-रोज नहीं सहूँगी ।

लैला—क्या करोगी ? मुझे मार डालोगी ? यह तो कोई अचरजकी बात नहीं है । जो पतिके हत्यारेसे शादी कर सकती है, वह कन्याकी हत्या भी कर सकती है । ( अनुकंपाके स्वरमें ) हाय री अभ्रागिनी स्त्री ! तेरे ऊपर क्रोध क्या कहूँ ! कभी-कभी तेरे लिए मुझे बड़ा दुःख होता है ! तू पहले किसकी स्त्री थी और अब किसकी स्त्री हुई है ! कहाँ वह शेरखॉ, और कहाँ यह जहाँगीर ! कहाँ अनाथ ग़रीब स्वच्छ नील समुद्र, और कहाँ दुर्गन्धपूर्ण शुद्र कीचड़से भरी यह गद्देवा ! कहाँ शेर, और कहाँ सियार !—ओ नारी, तुझे लज्जा नहीं आती, दुःख नहीं होता कि तुने अपने उस देवताके सिंहासनपर अपनी इच्छासे एक कामुकको बिठाया है ! उम सरल, उदार, पूज्य, पवित्र, उज्ज्वल, महिमायु चरित्रके माहात्म्यको भूलकर आज तू एक नीच, हेय, वलुष पंकिल पापकी उपासना करने बैठी है ! तुझे लज्जा नहीं आती कि स्त्रीका जो कुछ महान् है, वह स्नेह, कृतज्ञता और पुण्य गँवाकर एक शैतानके हाथ तुने अपनेको बेच डाला है ।

नूर०—चुप रह लड़की !

लैला—किसलिए नारी ? तू आज भारतकी सम्राज्ञी होकर सोचती है कि मैं तेरी उड़ी भौह देखकर भयके मारे जमीनमें घँस जाऊँगी ? यह भूलकर भी न समझना ! याद रख, तू अगर जहाँगीरकी स्त्री है, तो लैला भी शेरखॉकी लड़की है ।

नूर०—( ऊँचे स्वरसे ) लैला !

लैला—( वैसे ही स्वरमें ) नूरजहाँ !

[ दोनों क्रोधमें भरी हुई दो शेरनियोंकी तरह ज्वालामयी दृष्टिसे परस्पर टाकती हैं । इसी समय जहाँगीर प्रवेश करते हैं । ]

जहाँ०—यह क्या लैला ! यह क्या नूरजहाँ !

[ दोनों चुप रहती हैं । नूरजहाँ रो देती है । ]

लैला—रोओ, रोओ, जिन्दगी-भर रोओ, सायद इससे ही यह कलंककी कालिमा

धुल जाय । तुम तो बुरी नदी थीं, किसने तुम्हें यह सलाह दी ! किसने तुम्हें स्वर्गके राज्यसे खींच लाकर (जहाँगीरको दिखलाकर) इस अस्थि-कुराडमें डाल दिया ?

जहाँ०—समझ गया । याद रख लड़की, तू यद्यपि नूरजहाँकी कन्या है, तो भी मेरे धैर्यकी भी एक हद है ।

लैला—याद रखिएगा सम्राट्, आप यद्यपि नूरजहाँके स्वामी हैं, तो भी मेरे धैर्यकी भी एक हद है ।

जहाँ०—देखता हूँ, तेरा साहस बहुत बढ़ गया है । अबकी बार मैं तुम्हें दण्ड दूँगा ।

लैला०—आप दण्ड देंगे ? मुझे ?

जहाँ०—हाँ हाँ, मैं, और तुम्हें । तेरा व्यवहार असह्य हो उठा है । मैं तेरे इस मिजाजको नर्म करना जानता हूँ ।

लैला—सम्राट्, लैला शेरख़ाँकी लड़की है । वह डरनेवाली नहीं है ।—तुम स्वेच्छाचारी ढाकू हो । क्या इसी नीतिको लेकर तुम एक साम्राज्यका शासन करने बैठे हो ? जहाँगीर, मुझे तो इसी बातपर बड़ा भारी अचरज हो रहा है कि तुम इस समय शेरख़ाँकी लड़कीके सामने इस तरह खड़े हुए हो ! जल्दा, जरा मेरे सामने आँख उठाकर तो देखो, देखूँ, तुममें कितना साहस है ! देखो,—याद रखो, मैं शेरख़ाँकी लड़की हूँ । देखो,—देखूँ, तुममें कितनी हिम्मत है !

जहाँ०—नूरजहाँ, इस शेरनीको अगर तुम मना न करोगी तो मैं अल्लाहकी कसम खाकर कहता हूँ कि—

लैला—मुझे मार डालोगे ? तो बही करो सम्राट् ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे मार डालो । जिस तरह मेरे पिताको मार डाला है उसी तरह मुझे भी मार डालो । उससे मुझे कमसे कम यह सान्त्वना तो अवश्य होगी कि मैं मरते दम तक तुम्हें कोस-कोसकर मर सकी ।

जहाँ०—अच्छी बात है ! ऐसा ही होगा ।—पहरेदार !

नूर०—अबकी इसे क्षमा कर दीजिए जहाँपनाह, इसमें मेरा ही दोष है । मैंने ही इसे छेड़कर खिन्नाया है ।

जहाँ०—नहीं, मैं अब और नहीं सह सकता नूरजहाँ, इसका फैसला आज ही

कर डालना होगा । —पहरेदार !

नूर०—( घुटने टेककर ) जहाँपनाह, मेरा पुत्र नहीं रहा, कन्याको बचने दीजिए । अबकी इसे क्षमा कर दीजिए ।

जहाँ०—( कुछ सोचकर ) अच्छा, अबकी क्षमा करता हूँ; लेकिन यही आखिरी मर्तबा है नूरजहाँ ! ( लैलाको टहोका देकर ) यही आखिरी मर्तबा है, समझी लड़की ? याद रहे ।

( जहाँगीरका प्रस्थान । लैला घृणाकी दृष्टिसे जहाँगीरकी ओर देखती रहती है । )

लैला—( उनके चले जानेपर सहसा नूरजहाँकी तरफ देखकर ) अम्मी !

नूर०—लैला !

लैला—एक काम करोगी ?

नूर०—क्या ?

लैला—तुमने जो पाप किया है, वह मेरी सौ मिड़िकियोंसे भी पुराय तो हो नहीं सकता । अब उसका कुछ प्रायश्चित्त कर डालो ।

नूर०—क्या प्रायश्चित्त ?

लैला—इस परिवारको नरकमें डालो । अगर स्वर्गके राज्यसे गिरी हो, तो फिर पूरी तौरसे पिशाची बन जाओ । तुम इस शाही खान्दानको चारों ओरसे लपेटकर नागिनकी तरह अपने विषसे नष्ट कर दो । इस परिवारको मिटा दो । मैं तुम्हारा कहा न माननेवाली लड़की हूँ; लेकिन, इस मामलेमें तुम जो कुछ कहोगी वही करूँगी ।—

नूर०—( लैलाका हाथ पकड़कर ) जो कहूँगी वही करोगी ?

( नूरजहाँका मुख उज्ज्वल हो उठता है । )

लैला—हाँ अम्मी, मुझमें बुद्धि नहीं है । तुम अपनी शैतानी बुद्धि मुझे दे दो । मैं अपनी सारी शक्ति तुमको दूँगी । आओ, दोनों जनी मिलकर एक भारी तूफान उठावें ! हम दोनों आज माँ और बेटी नहीं हैं, बल्कि दोनों बहने हैं;—शैतानी हैं,—हमारी एक गति, एक लक्ष्य और एक परिणाम है ।

## तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—अन्तःपुरके महलका जनाना बाग

समय—चाँदनी रात

[ खदीजा टहल-टहलकर गा रही है ]

गीत

क्यों इतना है चन्द्र मनोहर ?—रूप उसीका पाया है ।

क्यों इतना रंगीन कमल है ?—उसका रंग चुराया है ॥ क्यों० ॥

क्यों इतना है ललित कोकिलाका संगीत हृदयहारी ?

उसने भी उस प्रियतमहीका मीठा बोल सुनाया है ॥ क्यों० ॥

क्यों यों स्निग्ध सुगन्धित कोमल मलय पवन है ? हों वह भी-

स्पर्श उसीका पाकर, सब जगके भन भाया है ॥ क्यों० ॥

गगन-भुवनमें व्याप्त सदा ही रूप प्रकाश उसीका है ।

विधिने सब सौन्दर्य उसीसे लेकर जगत बनाया है ॥ क्यों० ॥

उसके चरण हृदयमें रखती पृथ्वी, इससे ही उसको ।

मैं करती हूँ प्यार हृदयसे, मनमें वही समाया है ॥ क्यों० ॥

इस जीवनके दुख-अभाव जब, भाग्य-चक्रका फेर सभी ।

इन आँखोंके किरण-तले रह मैंने सहज भुलाया है ॥ क्यों० ॥

[शाहजहाँ जब प्रवेश करते हैं तब भी खदीजाका गीत समाप्त नहीं होता ।

शाहजहाँ भी उसमें कुछ विघ्न नहीं डालते, सुनने लगते हैं । खदीजा आप अपनेमें ही मस्त होकर गा रही थी । शाहजहाँको देखकर गाना बंद कर देती है और दौड़कर शाहजहाँसे लिपट जाती है ।]

खदीजा—कौन, मेरे प्राणेश्वर ?

शाह०—प्राणेश्वर हू या नहीं, सो तो नहीं जानता । पर मैं खुर्रम अवश्य हूँ ।

खदीजा—मैं अबतक तुम्हारी ही राह देख रही थी ।

शाह०—मेरा परम सौभाग्य !—मैं तुमसे एक बात, यह पूछता हूँ खदीजा, कि अभी तुम जो गाना गा रही थीं, सो किसे लक्ष्य करके ?

खदीजा—सो क्या तुम जानते नहीं प्यारे ?

( शाहजहाँके दोनों हाथ अपने हाथोंमें ले लेती है । )

शाह०—इस तरह करके ही तो तुम गङ्गङ्ग मचा देती हो ।

खदीजा—तुम्हें ही लक्ष्य करके गा रही थी ।

शाह०—तब तो तुमने मुझे बड़ी ही चिन्तामें डाल दिया ।

खदीजा—क्यों ?

शाह०—मैंने अपने चेहरेको अकसर आईनेमें देखा है । मैंने देखा है कि न वह कमल है, और न चन्द्रमा ही है ।

खदीजा—मैं तुम्हारे सुखमें जो सौंदर्य देखती हूँ नाथ, वह सैकड़ों चन्द्रमाओं या कमलोंमें नहीं है । कारण, मैं इस मुखमें एक एक महिमामय अन्तर्जगत् देखती हूँ । इन दोनों आँखोंके भीतर मैं तुम्हारी प्रतिभा और सब प्राणियोंपर दयाका भाव देखती हूँ । इस ऊँचे मस्तकमें एक साहस और अपनी मर्यादाके खयालकी झलक देखती हूँ । इन ओठोंके किनारोंमें तुम्हारी दृढ़-प्रतिज्ञा और स्नेह देखती हूँ । मैंने तुम्हारे शरीरमें ही तुमको पाया है, जैसे हिन्दू भक्त प्रतिमाके भीतर अपने देवताओंको पाता है ।

शाह०—तो फिर तुम्हारा उद्धार निश्चित है । अच्छा खदीजा, तुम्हारे पिता आसफ और सम्राज्ञी नूरजहाँ सगे भाई-बहन हैं न ?

खदीजा—हाँ नाथ ।

शाह०—म आसफकी लक्ष्मी हो और लैला नूरजहाँकी लक्ष्मी है ?

खदीजा—हाँ ।

शाह०—तुमने तो बड़े ही सोचमें डाल दिया ।

खदीजा—क्यों नाथ ?

शाह०—ऐसा भी कहीं होता है ?

खदीजा—क्या नहीं होता ?

शाह०—यही कि तुम हो ऐसी बेचारी सीधी-सारी, और नूरजहाँकी लक्ष्मी

है मानों दूसरा सिकंदरशाह । यह सोचकर मुझे बड़ी ही चिन्ता हो गई है कि आखिर उसने बेचारे शहरयारसे क्यों शाही कर ली ?

खदीजा—उन्हें वह प्यार तो जरूर करती है ।

शाह०—ऊँ हूँ ! वह औरत प्यार करनेवाली चीज नहीं है ।—मेरी समझमें ही नहीं आता कि बेचारा शहरयार उसको लेकर क्या करेगा ?

खदीजा—क्यों ?

शाह०—ऊँ हूँ ! बिल्कुल ही मेल नहीं खाता । बल्कि लैलाके साथ ब्याह होना चाहिए था मेरा, और शहरयारके साथ ब्याह होना चाहिए था तुम्हारा ।

खदीजा—तो क्या होता ?

शाह०—क्या होता, सो तो कुछ कह नहीं सकता । लेकिन हाँ, उसको काबूमें करके मुझे खूब आनन्द होता । और तुम सीधी-सादी गौ हो । शहरयारकी बीबी होनेसे तुम्हारी भी जोड़ी ठीक मिल जाती । लेकिन मैं बराबर देखता हूँ कि जो जैसा चाहता है, उसे वैसा नहीं मिलता ।—तो, वे भाई खुसरू आ रहे हैं । तुम भीतर जाओ ।

( खदीजाका प्रस्थान । खुसरूका प्रवेश )

शाह०—क्यों भाई ?

खुसरू—कुछ खबर है ?

शाह०—क्या खबर है ?

खुसरू—तुम्हें अचाने बुला मेजा है ।

शाह०—क्यों—? इस तरह अचानक ?

खुसरू—दक्खिनके राजे विद्रोही हो उठे हैं, उन्हें काबूमें लानेके लिए तुमको फिर वहाँ जाना होगा ।

शाह०—फिर ?—अभी उस दिन तो मैं उन्हें बादशाहके अधीन करके आया ही हूँ ।

खुसरू—उन्होंने फिर सिर उठाया है ।

शाह०—कैसा आश्चर्य है ! मैं देखता हूँ, युद्ध करते-करते ही मेरा शुरूआत जीवन बीत गया, जरा भी शान्ति नहीं पाई । अभी दक्खिनका सूबा जीतकर आया

था, फिर मेवाड़पर चढ़ाई की और वहाँ विजय प्राप्त की । अब फिर दक्खिन जाना पड़ेगा ।

खुसरू—खुर्रम, तुम्हारी वीरता देखकर मैं बहुत ही ताज्जुबमें हूँ । मेवाड़की लाल ध्वजा आठ सौ बरससे मुगलोंकी ताकतको तुच्छ करके अपने पहाड़ी किलेकी दीवारपर फहराती आती है । उसी मेवाड़को तुमने खेलकी तरह जीत लिया !

शाह०—( हँसकर ) पर मेवाड़को मैंने नहीं जीता भाई !

खुसरू—तुमने नहीं जीता ? यह क्या ?

शाह०—सेनापति महाबतखॉं मेवाड़को जीत चुके थे, उसके बाद अकबाने मुझे मेवाड़से सन्धि करनेके लिए भेजा । मैंने जाकर सुलह की । किन्तु, प्रसिद्ध यह हुआ कि मैंने मेवाड़को जीता !

खुसरू—मगर महाबतखॉंने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया ?

शाह०—यह उनकी उदारता है । वे उस सम्मानको नहीं चाहते । बल्कि, मालूम नहीं किस कारणसे, मेवाड़की जयके संबंधमें वे अपनी बातको मानों दबाना ही चाहते हैं ।

खुसरू—हाँ ! यह मैं नहीं जानता था । सो, चाहे जो हो, उसके बाद राणाके साथ तुमने जो सन्धि की है, उसमें तुमने बड़ी ही उदारता दिखाई है । हारे हुएके साथ ऐसी सम्मानकी सन्धि शायद ही पहले कभी हुई हो ।

शाह०—भाई साहब, देश, काल और पात्र देखकर ही शक्तिको व्यवहार किया जाता है । मेवाड़का राजवंश एक बहुत पुराना नेकनाम राजवंश है ।—जिस वंशमें बाप्पा रावळ, रानी चन्द्रावती, समरसिंह, प्रतापसिंहने जन्म लिया है, उसी वंशका आज पतन हुआ है । उसके दुःखपर जरा गौर तो करो ! उसके उस दुःखके बोझको यथासंभव हलका करनेकी ही कोशिश मैंने की है ।

खुसरू—खुर्रम, मैं तुमपर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ और प्यार करता हूँ । मैं भी तुम्हारे साथ दक्खिन चलूँगा, अगर तुम इसमें सहमत हो और अकबा हुक्म दे दें तो ।—मैं युद्ध करना सीखूँगा ।

शाह०—चलो, तो पहले अकबाके पास चलें ।

खुसरू—चलो ।

शाह०—भाई साहब, आप चलें, मैं आता हूँ ।

( खुसरूका प्रस्थान )

शाह०—इन राजाओंकी इतनी हिम्मत ! ये उस दिन अधीनता स्वीकार कर चुके हैं। अबकी इन्हें पकड़कर इस राजधानीमें ही ले आऊँगा ।—खदीजा, खदीजा !

[ खदीजाका प्रवेश ]

शाह०—खदीजा, दक्खिन चलनेकी तैयारी करो ।

खदीजा—यह क्या !

शाह०—यह 'क्या' क्या ? वहाँके राजाओंने फिर सिर उठाया है, उन्हें परास्त करनेके लिए जाना होगा ।

खदीजा—तुम भी जाते हो ?

शाह०—नहीं तो क्या तुम ऐसी रुस्तम हो गई हो कि अकेली ही जाकर दुश्मनोंको ठीक कर दोगी ?—लैला होती तो शायद वह कुछ कर भी सकती ।—हाँ खदीजा, मैं भी जाऊँगा । अब्बाने मुझे बुला भेजा है । मैं उन्हींके पास जा रहा हूँ ।

खदीजा—नाथ ! ( शाहजहाँका हाथ पकड़ती है । )

शाह०—जाओ खदीजा, यह नारीकेरसभरे रंगीन ओठों और चंचल कटाक्षोंके साथ क्रीड़ा करनेका समय नहीं है ।—सामने कठोर कर्तव्य खड़ा है ।

( प्रस्थान )

खदीजा—( आँसू पोंछकर ) नहीं, यह मेरी गल्ती है । तुम्हेंके लिए न जाने कितने काम हैं, ये न जाने कितना ज्ञान रखते हैं, और हम आभागिनी स्त्रियोंने और कुछ नहीं सीखा, केवल प्यार करना ही सीखा है ।

## दूसरा दृश्य

स्थान—लाहौरके शाही महलका अन्तःपुर

समय—रात

[ भारी पोशाक और जबाऊ गहने पहने नूरजहाँ अकेली एक विशाल कमरेमें टहल रही है । ]

नूर०—मैंने क्षमताकी मदिरा पी है ! मैं हर रगमें उसकी गर्म उत्तेजनाका अनुभव कर रही हूँ !—यही तो जीवन है ! केवल आत्म-रक्षा और जन्म-दानके तन्त्र ही इस सृष्टिके महाचक्रको नहीं घुमा रहे हैं । इसमें आनन्द-भोग भी है ! नहीं तो पच्ची इतने आवेगसे क्यों गा उठता है ? वृक्ष इतने विविध पत्र-पुष्पोंसे क्यों विकसित हो उठता है ? नदीके वक्षःस्थलमें इतनी इतनी उछलती हुई फेन-पूर्ण तरंगें क्यों उठती हैं ? आकाशमें चन्द्रा इतना क्यों हँसता है ? यदि भूख और प्यासका मिटाना ही इस जीवनकी चरम सीमा है, तो आहारके इतने सरस और स्वादिष्ट होनेका क्या प्रयोजन है ? फूलोंकी सुगन्ध इतनी मधुर होनेका क्या अर्थ है ? संगीत इतना मधुर क्यों हुआ ? प्रतिभा केवल सत्य-राज्यका आविष्कार करके ही चुप नहीं है, वह कल्पनाके सुवर्ण-राज्यभी भी सृष्टि करती है ।—यही तो यथार्थ जीवन है । मैं आज केवल जीवन धारण नहीं करती, मैं आज रग-रगमें जीवनका अनुभव कर रही हूँ ।

[ दासीका प्रवेश ]

नूर०—क्यों बाँदी ?

दासी—बेगम साहबाके भाई मिलना चाहते हैं ।

नूर०—आसफ ?

दासी—हाँ ।

नूर०—कह दो, इस वक्त फुर्रत नहीं है ।—( कुछ सोचकर ) अच्छा ले जाओ ।

( दासीका प्रस्थान )

नूर०—अब्बाके मरनेके बाद एक ही इशारेमें उनका मन्त्री-पद आसफको दिला दिया है । क्षमताकी एक मधुरता यह है कि उसके एक कृपा-कटाक्षके लिए मनुष्य मुँह बाये रहता है । क्षमता लात मारकर जो अनुग्रह फेंक देती है उसे अक्षमता व्यप्राप्ति के साथ हाथ बढ़ाकर उठा लेती है । क्षमतामें मोह अवश्य है ।

[ आसफका प्रवेश ]

नूर०—क्या है आसफ ?

आसफ—इंग्लैण्डके राजदूत रो साहबने तुमसे फिर अनुरोध किया है ।

नूर०—सूरतमें कोठी बनानेकी अनुमतिके लिए ?

आसफ—हाँ ।

नूर०—अच्छा, मैं इस बारेमें सम्राट्से आज ही कहूँगी । कल भूल गई थी । कहना, वे चिन्ता न करें, चिन्ताका कोई विशेष कारण नहीं है ।

नूर०—( टहलते-टहलते ) लेकिन मैंने अभी तक अपनी क्षमताका यथोचित व्यवहार नहीं किया । अब बदलेकी तैयारी करनी होगी । जिसके लिए सब कुछ खोया है, वही काम अब शुरू करना होगा ।

[ शाहजहाँका प्रवेश ]

शाह०—सम्राज्ञी, क्या यहाँ अन्धा नहीं थे ?

नूर०—उनसे तुम्हें क्या मतलब है खुर्रम ?

शाह०—उन्होंने मुझे दक्खिन जानेकी आज्ञा दी है । उसीके बारेमें कुछ बातचीत करना चाहता था ।

नूर०—वे यहाँ थे तो जरूर, पर कहीं चले गये हैं ।

शाह०—अच्छा, उन्हें खोजने जाता हूँ । ( जाना चाहता है । )

नूर०—( सहसा ) सुनो खुर्रम !

शाह०—( फिरकर ) क्या आज्ञा है सम्राज्ञी !

नूर०—मैं जानती हूँ कि तुम सम्राट्की आज्ञासे दक्खिन जा रहे हो, वहाँके विद्रोहियोंका दमन करने । परन्तु सुनो, मैं एक बातसे तुम्हें सावधान किये देती हूँ ।

शाह०—किस बातसे ?

नूर०—खुर्रम, इस समय सम्राट्के प्रिय पुत्र तुम नहीं, शाहजादा खुर्रम हैं ।

शाह०—एक सन्तानकी अपेक्षा दूसरी सन्तानपर अगर पिताका स्नेह अधिक है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

नूर०—तुम सम्राट्के चतुर सेनापति हो, सम्राट्के दाहिने हाथ हो और दक्खिनके युद्धके महारथी हो । लेकिन भारतके भावी सम्राट् सम्राज्ञी रेवाके पुत्र शाहजादा खुर्रम हैं ।

शाह०—आपका यह गुढ़ इशारा मैं समझ नहीं सका बेगम साहबा !

नूर०—इसका समझना क्या इतना कठिन है ? तुम रहोगे दूर दक्खिनमें ।

हो सकता है कि विद्रोहियोंको वश करनेमें दस बरस लग जायँ और तुमको वहीं रहना पड़े। इधर सम्राट्के पास रहेंगे उनके औखोंके अंजन हृदय-रंजन शाहजादा खुसरू। खुसरू मेरे कोई नहीं हैं, तुम मेरे भाई आसफके दामाद हो, इसीसे यह बात तुमको जता दी।

शाह०—आप क्या करनेके लिए कहती हैं ?

नूर०—मैं कहती हूँ, खुसरूको सम्राट्के पाससे दूर हटाये रखो, जिससे पीछे भारतका सम्राट् कौन होगा, इसका निर्णय तुम लोगोंकी खुदकी ताकतपर निर्भर रहे। इसमें अन्याय कुछ नहीं है।

शाह०—खुसरू अपनी इच्छासे आप ही मेरे साथ जाना चाहता है।

नूर०—अच्छी बात है, तो उसे साथ लेते जाओ।

शाह०—पर सम्राट् अनुमति कैसे देंगे ?

नूर०—इस बारेमें मैं सम्राट्से अनुरोध करूँगी।

शाह०—अच्छा, तो जानेकी आज्ञा दीजिए ( प्रणाम करना है )।

नूर०—याद रहेगा ?

शाह०—रहेगा। ( प्रस्थान )

नूर०—बाँदी !

[ बाँदीका प्रवेश ]

नूर०—मैं आसफसे जरा मिलना चाहती हूँ। ( बाँदीका प्रस्थान )

नूर०—इस खुरमको मैं प्यार नहीं करती; बल्कि कुछ-कुछ डरती हूँ। यह बातचीत कम करता है, इधर-उधर नहीं देखता और मेरे ऊपर इसके हृदयमें एक प्रकारका दर्पपूर्ण अवज्ञाका भाव है। धीरे-धीरे इसे भी मैं दुनियासे खिसकाऊँगी। इस घारे ही परिवारको मैं अग्नि-कुण्डमें डालूँगी।

[ आसफका प्रवेश ]

नूर०—आसफ, मैं एक बात कइनेको भूल गई थी। बंदरराजको आज्ञा दो कि मैं कल दिनको दोपहरके समय उससे मुलाकात करना चाहती हूँ।

आसफ—इस पाजी नीचसे तुम्हारा क्या मतलब है मेहर ? जो तुम्हारे स्वामी की हत्या करनेवाला—

नूर०—( रुखी हँसी हँसकर ) उसीके अनुग्रहसे तो मुझे आज यह सम्मान प्राप्त हुआ है !

आसफ०—मगर—

नूर०—कुछ पृछो मत, उत्तर नहीं पाओगे !—जो कहूँ, वह किये जाओ !  
क़ी-चरित्रको समझनेकी चेष्टा मत करो, उसे नहीं समझ सकोगे ! जाओ ।

( आसफ़का प्रस्थान )

नूर०—एक ही शक्तिके बलसे प्रह और उपप्रह अपनी नियमित कक्षामें घूमते हैं, और धूमकेतु महाशून्यको भेदकर चला जाता है । एक ही शक्तिके बलसे मेघ मीठे जलकी धारा बरसाते हैं, और हाहाकार करता हुआ वज्र आकाशसे पृथ्वीपर फट पड़ता है । एक ही शक्तिके बलसे बर्फ़ गलकर नद और नदियोंका रूप धारण कर पृथ्वीको हरी-भरी बनाता है और विराट् जल-प्रपातकी भारी चोट पृथ्वीके वक्षःस्थलको विदीर्ण भी कर देती है ।

( प्रस्थान )

### तीसरा दृश्य

स्थान—दक्षिणमें रावगीदुर्ग

समय—रात

( शाहजहाँ और बंदरराज खुसरूके सोनेके कमरेमें बातचीत कर रहे हैं । )

शाह०—राजा, आप आ गये, शक हुआ । मुझे आज इसी घड़ी एक युद्धमें जाना है । मैं सोच रहा था कि भाई साहबको किसत्री देख-रेखमें छोड़ जाऊँ । अब आपको ही सौंपकर चला जाऊँगा ।

राजा—बेशक, बेशक, इसमें सन्देह ही क्या है !

शाह०—वे कल रातको पागलोंकी तरह बक रहे थे ! कभी रोते थे; कभी रुआन्दको, कभी मुझे और कभी मेरी स्त्रीको भला-बुरा कहकर झिड़कियाँ दे रहे थे ! कभी भाग्यपर व्यंग करके हँसते थे !—इसी तरह उन्होंने रात बिताई है ।

राजा—तो वे पूरे तौरसे पागल हैं !

शाह०—पागल नहीं हैं । कभी-कभी उनकी यह हालत हो ही जाती है !

पहले भी हो जाती थी। ऐसी अवस्थामें साधारणसे,—यहाँ तक कि किसी कल्पित कारणसे भी बहुत विचलित हो उठते हैं। दम-भरमें औरतोंकी तरह रोने लगते हैं। इस समय मैं उन्हें आपके हाथमें सौंपे जाता हूँ।—आप देखिएगा।

राजा—इस बारेमें आप जरा भी चिन्ता न कीजिए शाहजादा साहब। मैं आपके यहाँका पुराना सेवक हूँ।—बहुत ही अनुगत और आज्ञाकारी हूँ।

शाह०—इसीसे तो आपपर विश्वास करके भाई खुसरूको छोड़ जाता हूँ।

राजा—कुछ चिन्ता नहीं है शाहजादा साहब। युद्धसे लौट आकर देखिएगा कि चिन्ता करनेका कोई कारण ही नहीं रहा है।

शाह०—अच्छी बात है। तो अब मैं जाता हूँ राजा साहब। (प्रस्थान)

राजा—पहरेदार !

[ पहरेदारका प्रवेश ]

राजा—पहरेदार, किलेका फाटक बंद कर दो और मेरे आदमी करामतख़ाँको यहाँ भेज दो।

राजा—(टहल-टहलकर) शाहजादा ! इतनी बुद्धि मुझमें है। एक ही निशानेमें दो चिड़ियाँ मारूँगा। इधर खुर्रमको खुश करूँगा और उधर नूरजहाँको। नूर-जहाँने तो अपना विचार मुँह खोलकर खुलासा ही कह दिया था, मगर खुर्रम चूँकि खुसरूके सगे भाई हैं, इसलिए वे अपना मनसब खुलासा साफ़ साफ़ नहीं कह सके। लेकिन मैं इशारा भी खूब समझ सकता हूँ। जब जहाँगीरका इशारा ठीक समझ लिया था, तब खुर्रमका न समझ सकूँगा ? शेरख़ाँको मारकर राजाबहादुर हुआ था, अबकी खुसरूको मारकर एकदम महाराजा हो जाऊँगा। ओः ! किस तरह सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ रहा हूँ ! एक एक हत्या करना और एक एक सीढ़ी चढ़ना !

[ खुसरूका प्रवेश ]

खुसरू—तुम कौन हो ?

राजा—मैं बन्दरका राजा हूँ।

खुसरू—यहाँ क्यों आये हो ?

राजा—शाहजादा खुर्रम मुझे आपकी रक्षा और देख-रेखके लिए यहाँ भेज गये हैं।

खुसरू—छोड़ गये हैं ? वे कहाँ चले गये ?

राजा—युद्ध करने ।

खुसरू—गये ?

राजा—हाँ, शाहजादा साहब !

खुसरू—तुमको पहरेदार बनाकर छोड़ गये हैं ?

राजा—हाँ, शाहजादा साहब !

खुसरू—किलेका फाटक क्यों बंद है राजा ?

राजा—यूवराज खुर्रमकी आज्ञासे । शाहजादाको इस किलेके बाहर जानेकी अनुमति नहीं है ।

खुसरू—यह क्या ? तो क्या मैं खुर्रमका कैदी हूँ ?

राजा—कैदी नहीं हैं शाहजादा !

खुसरू—कैदी नहीं हूँ ?—जब मुझे किलेके बाहर जानेकी अनुमति नहीं है, तब कैदी होनेमें और क्या बाकी है ?

राजा—शाहजादा साहब—

खुसरू—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता । खुर्रमको बुलाओ !—पर नहीं, वह तो चला गया !—दरवाजा नहीं खोलोगे राजा ?

राजा—अपने मालिककी आज्ञा बिना—

खुसरू—तुम्हारा मालिक खुर्रम है ?—ओः, सो अच्छी बात है ! अच्छा जाओ ।

राजा—जो आज्ञा । मैं बाहर पहरेपर हूँ, आप निश्चिन्त होकर सोइए । शाहजादा साहब—

खुसरू—पहरेपर हो ! मैं क्या सिढ़ी या पागल कुत्ता हूँ जो मुझे पहरेमें रखना होगा ?

राजा—शाहजादा साहब, मेरा एक निवेदन है ।

खुसरू—जाओ, मेरे सामने कुत्तेकी तरह दुम न हिलाओ ! चले जाओ ! हट जाओ !  
( राजाका प्रस्थान )

खुसरू—मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि मेरी यह दुर्दशा होगी । अपने छोटे भाईके हाथ बन्दी !—जिस भाईको मैं इतना प्यार करता हूँ !—इससे तो मौत

अच्छी थी !—अगर एक बार अन्धाको यह जनानेका उपाय होता ! (द्वारके पास जाकर किवाड़े ठेलकर) यह क्या, कमरेका दरवाजा भी बाहरसे बंद है ! पहरेदार ! नहीं उसे पुकारनेसे क्या होगा । उसने निश्चय ही बिना आज्ञाके द्वार बन्द नहीं किया होगा ।—ओः, कैसी दुर्दशा है ! ओ हो हो हो ! (सिरपर हाथ रखकर बैठ जाता है ।) रात अधिक बीत गई है, सोऊँ । (लेट जाता है ।) —नहीं, नींद न आवेगी ! खुर्रम ! तुम कितने निटुर हो ! अपना भाई भी इतना निटुर होता है ! और मुझसे, जो अपनी इच्छासे तुम्हारे साथ आया, यह निटुराई ! मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हारे लिए अनायास अग्नि-कुण्डमें भी फाँद सकता हूँ !—ओ हो हो हो ! कितने निटुर हो ! कैसे निटुर ! (रोता है )

( इसी समय खुसरूके पीछेसे हत्यारोंके साथ राजाका प्रवेश और इशारा करना । हत्यारे खुसरूकी पीठमें छुरा मारते हैं । खुसरू चित होकर गिर पड़ता है । हत्यारे छातीमें छुरा भोंक देते हैं । खुसरू धरतीपर गिरकर आर्तनाद करता है । )

खुसरू—( राजाकी ओर देखकर ) इसीलिए मुझे कंदकर रक्खा था खुर्रमने ! अब समझा !—ओः—

राजा—काम तमाम हो गया !—तुम जाओ— ( हत्यारोंका प्रस्थान )

खुसरू—तुम्हारा काम भी पूरा हो गया !—तुम भी जाओ—

( राजाका प्रस्थान )

खुसरू—खुर्रम ! तुम सम्राट् होना चाहते हो; लेकिन मेरा खून किये बिना भी तुम सम्राट् हो सकते थे । खुर्रम ! तुम्हारे इस ममताहीन क्रूर व्यवहारसे मुझे ऐसा कष्ट हुआ है कि मृत्युकी यन्त्रणा उसके आगे कुछ नहीं है ! ओ हो हो हो !!—अन्धा, अन्धा !—( मृत्यु )

### चौथा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका दरबार

समय—रात

[ जहाँगीर, नूरजहाँ और आसफ बातें कर रहे हैं । जहाँगीरकी आँखें लाल हैं । वे आसफकी तरफ देख रहे हैं । ]

आसफ—यह काम खुर्रमका नहीं। मैं खुर्रमको जानता हूँ। वे भाईकी हत्या कभी नहीं कर सकते। ऐसा होना असम्भव है।

जहाँ०—यह हत्या खुर्रमने ही की है, इस बारेमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। खुर्रमकी सम्मतिके बिना राजाकी क्या मजाल कि वह मेरे पुत्रकी हत्या करे ?

आसफ—जहाँपनाह, राजाको दक्खिनमें खुर्रमने नहीं बुलाया था।

नूर०—आसफ, तुम अपने दामादको बचानेकी चेष्टा कर रहे हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। खुर्रम अगर तुम्हारा दामाद है, तो जहाँपनाहका पुत्र भी है; लेकिन जहाँपनाह न्याय-विचारके समय अपने पुत्रका भी पक्षपात नहीं करते, यह जग-प्रसिद्ध बात है।

जहाँ०—निश्चय ही मैं न्याय-विचार करूँगा।

आसफ—खुदावन्द—

जहाँ०—मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता आसफ ! मैं इसी घड़ी खुर्रमको पत्र लिखता हूँ और इस मामलेकी कैफियत चाहता हूँ। मैं अन्ततक इसकी जाँच करूँगा और खुर्रमको उचित दराह दूँगा।—अभागा खुर्रम ! अभागा ! आज रातको पाँच सौ सवारोंके साथ खुर्रमके पास डाक रवाना करो। मैं इसी घड़ी पत्र लिखता हूँ।

( प्रस्थान )

आसफ—मेहर, यह सब तुम्हारी सलाहसे हुआ है।

नूर०—आसफ, तुम मेरे भाई जरूर हो, लेकिन जब राज-काजके सम्बन्धमें बातचीत करो, तब याद रखो कि मैं सम्राज्ञी हूँ और तुम मन्त्री। यह भी याद रखो कि अम्बाके मरनेके बाद यह मन्त्रीका पद मैंने ही तुम्हें दिलाया है।

आसफ—मेरा मन्त्री-पद ! वह तो तुम्हारे स्वेच्छाचारका एक पर्दाभर है ! हाय, किस बुरी घड़ीमें मैंने तुमसे सम्राज्ञी बननेके लिए कहा था !

नूर०—हाँ, बतलाओ, क्यों कहा था ? उस दिन मैंने कहा था कि 'सावधान !' लेकिन तुमने नहीं सुना। तुमने बाँध तोड़ दिया है ! इस समय भीतर रुके हुए जलके जोरको, हो सके, तो रोक रखो; मुझमें तो वह शक्ति नहीं है। जाओ !

( आसफका प्रस्थान )

नूर०—आग जला दी है ! अब वह खूब जले ! खुर्रम एक—समाप्त हो

गया । खुरम दो—उसके लिए प्रयत्न शुरू है । उसके बाद परवेज तीन । अभी उस-  
पर हाथ नहीं लगाया । उसके बाद यह साम्राज्य नूरजहाँ और उसकी बेटी लैलाका  
है ।—सम्राज्ञी रेवा ! तुम नक्षत्र हो सकती हो, पर मुझे अब यह देखना है कि  
कलंकी चन्द्रमाकी किरणोंके सामने तुम फीकी पड़ जाती हो या नहीं । मैंने जब  
अपनेको बेचा है, तब मैं अपना उचित मूल्य वसूल किये बिना न छोड़ूंगी । इसीके  
लिए मैंने सब खोया है । इसीके लिए मैं धर्मके पवित्र और उज्ज्वल राज्यसे नीचे  
गिरी हूँ । अब कोई बाधा न मानूंगी ।

[ रेवाका प्रवेश ]

रेवा—सम्राज्ञी नूरजहाँ !

नूर०—कौन ! सम्राज्ञी रेवा ! ( भयके साथ स्वागत ) यह क्या ! यह कैसी  
मूर्ति है !

रेवा—नूरजहाँ, तुमने मेरे पुत्रकी हत्या कराई है ?

नूर०—मैंने ?

रेवा—मैं तुमसे झगडा करने नहीं आई हूँ, तुम्हें फिडकी देने या भला-बुरा  
कहने भी नहीं आई हूँ । उससे मुझे कुछ लाभ नहीं । उससे अपने गये हुए पुत्रको  
अब मैं नहीं पा सकती । हाँ, केवल पूछने आई हूँ । तुमने मेरे पुत्र खुसरूकी  
हत्या की है ?

नूर०—आपसे यह किसने कहा ?

रेवा—मेरी अन्तरात्माने । तो भी मैं निश्चय करना चाहती हूँ । बोलो, सम्राट्से  
डरती हो ? मैं कसम खाती हूँ, सम्राट्से इस बारेमें एक अच्छर भी नहीं कहूंगी ।  
तुमने खुसरूकी हत्या कराई है ?

नूर०—अगर कराई ही हो—

रेवा—(दम-भर चुप रहकर नूरजहाँकी ओर ताककर) तो नूरजहाँ, तुमने  
महापातक किया है । तुम नहीं जानती कि यह कैसा महापातक है । इसके सिवा  
पुत्र क्या चीज है, सो तुम नहीं जानती । ( काँपते हुए स्वरमें ) जिसका पुत्र नहीं  
रहा है उस माताकी वेदना तुम नहीं समझ सकती !

नूर०—बेगम साहबा, अगर—

रेवा—तर्क मत करो ! प्रतिवाद मत करो ! पश्चात्ताप करो .—मैंने अपना स्वामी, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ, तुम्हें दे दिया था; केवल पुत्रकी रख छोड़ा था । वह भी तुमने छीन लिया ! मेरा और कोई नहीं है ! कोई नहीं है !  
 ओः—( दोनों हाथोंसे मुँह ढँक लेती है । )

[ लैलाका प्रवेश ]

लैला—अम्मी !

नूर०—क्या है लैला ?

लैला—क्या यह सच है ?

नूर०—क्या सच है ?

लैला—तुमने शाहजादा खुसरूकी,—इनके पुत्रकी हत्या कराई है ? यह सच है ?

नूर०—हाँ, सच है ।

लैला—( आँखें फाड़कर ) नूरजहाँ बेगम, क्या यह भी सम्भव है ? सम्राज्ञी रेवाके इकलौते बेटेको तुमने मरवा डाला ? जिस रेवाने तुम्हें साम्राज्यदान कर दिया,—हाँ, दान ही कर दिया, राजा जैसे भित्तुकको भिन्ना देता है, उसी तरह तुमको यह साम्राज्य जिन्होंने दे डाला,—उन्हीं रेवाके इकलौते बेटेको—ओः ! अम्मी, तुम नहीं जानती कि तुमने क्या किया है !

नूर०—बदला लिया है ।

लैला—बदला !—यही बदला है ! इस अभागिनीके इकलौते पुत्रकी हत्या करवाकर बदला ?—इनकी और जरा आँख उठाकर तो देखो ! कल ये जवान थीं और आज देखो, इनके सब बाल पक गये हैं, मस्तकपर गहरी रेखायें देख पड़ने लगी हैं और दोनों आँखोंके नीचे गहरी स्याही झा गई है ! अम्मी !—शैतानी ! तुने यह क्या किया ?

( लैलाका स्वर काँपने लगता है । )

नूर०—तुमने ही तो लैला, मुझसे शैतानी बननेके लिए कहा था ?

लैला—हाँ, कहा था । लेकिन तब मैं क्रोधके मारे अपने आपसे बाहर हो रही थी । मेरी उस कमजोरीसे लाभ उठाकर तुमने शहरवारके साथ मेरा ब्याह कर

दिया । लेकिन अन्तको,—ना, मैं इस बातको सोच नहीं सकी थी । ( रेनासे )  
अभागिन मा मेरी, यह मेरा काम नहीं है । ईश्वर जाने, मैं ऐसी कल्पना भी नहीं  
कर सकी थी । ( नूरजहाँसे ) अम्मी, तुम क्या थीं और क्या हो गईं ?

नूर०—लैला—

लैला—नहीं अम्मी, अब नहीं । तुम्हारे साथ मेल किया था, लेकिन अब  
नहीं । आजसे मेरी राह अलग तुम्हारी राह अलग । तुम अकेली ही इस परिवारको  
मिट्टीमें मिला सकती हो । दो होनेसे तो प्रलय हो जायगा ! ( प्रस्थान )

नूर०—सम्राज्ञी ! ( इतना कहकर सिर झुका लेती है । )

रेवा—समझ गई नूरजहाँ, तुम्हें पछतावा हो रहा है । ईश्वर तुम्हें क्षमा करेंगे ।  
तुम जानती नहीं ।—तुम समझ नहीं सकती । मैं तुम्हारे लिए भगवान्‌के निकट  
प्रार्थना करूँगी । और अपने लिए !—हे ईश्वर ! मैंने एक दिन कहा था, 'माताको  
इतना सुख है !' आज तुमने दिखा दिया, माताको इतना दुःख है ! कैसा कठिन  
यह दुःख है ! दुःखकी सीमा शायद अकेले तुम्हीं हो जगदीश ! ( प्रस्थान )

( रेवाके चले जानेपर नूरजहाँ कुछ देर चुप रहती है । )

नूर०—( धीरे-धीरे धीमे स्वरसे ) नूरजहाँ ! तूने इस हिन्दू ललनाके आगे  
सिर नीचा कर लिया ! पर्वतके शिखरपरसे एकदम उसके पैरोंपर गिर पड़ी ! यह  
क्षमा-भिक्षा चुपचाप सिर झुकाये हाथ फैलाकर ले ली ! कहाँ गया वह दर्प तेरा !  
नूरजहाँ युद्ध-यात्राके नारू बाजेके तालके साथ चलते चलते एकाएक सजाटेमें  
आकर खड़ी हो गई ! यह मुझे क्या हो गया ! अब क्या करेगी ? और भी आगे  
बढ़ेगी ? या पीछे फिरेगी ?—सोच ले ।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—दक्षिणमें-जयन्ती दुर्ग

समय—प्रातःकाल

[ शाहजहाँ और उनके सेनापति अमीरअली खबे खबे  
बातचीत कर रहे हैं ]

शाह०—अमीरअली, बंदरका राजा लाहौरको लौट गया ?

अमीर०—हाँ, जनाब !

शाह०—यह इत्या निश्चय सम्राज्ञी नूरजहाँकी आज्ञासे हुई है ।

अमीर०—सम्राज्ञीकी ?

शाह०—हाँ, सम्राज्ञीकी । अब सब समझमें आ रहा है । मैं देखता हूँ, वह औरत हम सबको एक एक करके हटाना चाहती है । उसका पहला शिकार हुआ बदनसीब खुसरू । उसके बाद मेरी बारी है ।

अमीर०—उसके बाद आपकी शाहजादा ?

शाह०—निश्चय ही । नहीं तो वह औरत खुसरूकी हत्याके लिए मुझे अपराधी ठहराकर मुझसे कैफियत न माँग भेजती ।

अमीर०—नहीं, यह कैफियत खुद सम्राट् जहाँगीरने माँग भेजी है ।

शाह०—वे तो अब नामको ही बादशाह हैं । बादशाहत नूरजहाँ कर रही है । मैं उस औरतकी आज्ञा नहीं मानता । मैं कैफियत नहीं दूँगा ।

अमीर०—लेकिन—

शाह०—इसमें लेकिन-वेकिन कुछ नहीं । इसके लिए अगर विद्रोह करना पड़े तो वह भी करूँगा ।

अमीर०—शाहजादा साहब, आज्ञा हो तो एक निवेदन करूँगा ।

शाह०—नहीं । अमीरअली, मैं इस औरतकी हुकूमत नहीं मानूँगा, कैफियत नहीं दूँगा । और पिताने जब साम्राज्य नूरजहाँके हाथमें ही सौंप दिया है, तब सम्राट् खुरम है, नूरजहाँ नहीं । मैं कैफियत नहीं दूँगा । जाओ, मैं अभी पत्र लिखे देता हूँ । अमीरअली, सम्राट्के पास पत्र ले जानेके लिए तैयार हो जाओ । (अमीरअलीका प्रस्थान ) खुद हत्या कराके मेरे सिर भाईकी हत्याका महापातक लादती है ! कैसा असहनीय साहस है ! पिता तो इस मक्कार औरतके जालमें फँस गये हैं; उनका अब निस्तार नहीं ! लेकिन मैं उन्हें इसके जालसे निकालूँगा,—उनकी रक्षा करूँगा ।

( खड़ीजाका प्रवेश )

शाह०—खड़ीजा, मैंने विद्रोह किया है । अब मैं भारतका सम्राट् हूँ ।

खड़ीजा—यह क्या नाथ, विद्रोह ?

शाह०—हाँ, विद्रोह, अब मैं सम्राट्से युद्ध करूँगा ।

खदीजा—नाथ, साम्राज्यके लिए पितासे युद्ध करोगे ?

शाह०—पिताके साथ नहीं खदीजा, नूरजहाँके साथ । जरा ठहरो, मैं पत्र लिखकर दे आऊँ । इतनी मजाल !

खदीजा—साम्राज्य ! बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य यों लाँच लाँच किया करता है । वह नहीं देखता कि हर एक मनुष्यके हृदयके भीतर बहुत सी अतुल सम्पत्तियाँ अनादरके साथ पड़ी हुई हैं । उनकी कोई परवा ही नहीं करता है । बाहर सुखके लिए इतनी तैयारी है, परन्तु भीतर सुखका समुद्र भरा है,—उधर ध्यान ही नहीं है । सुख अपने हाथके ही पास है; इतना निकट और सहज है तो भी सारे संसारके मनुष्य अन्धोंकी तरह उसे टटोलते फिरते हैं ! सिर्फ प्रेम करके—केवल प्यार करके ही मनुष्य सुखी हो सकता है । ( प्रस्थान )

### छट्टा दृश्य

स्थान—मइलका अन्तःपुर

समय—सन्ध्या

[ लैला गा रही है ]

गीत सोहनी

सेल-सी लगी है कैसी मोरे रे हियरवा ।

जानत सो बस मेरो ही जियरवा ॥ सेल० ॥

कठिन यन्त्रणा यह को समुझे, कैसी लोक-हँसाई ।

जाके लगी सोई समुझे, को जानत पीर पराई ॥ सेल० ॥

वह विष व्यापौ नस नस कैसे, निसि-दिन दहत सदा ही ।

कैसे अन्धकार हिय मेरे, घेरे रहत सदा ही ॥ सेल० ॥

एक किरनमय भुवन बीच हौं छाया रही जनु छाया ।

नील गगनमई बही फिरौं ज्यों काले घनकी काया ॥ सेल० ॥

चहुं दिसि हसी लसी, तिहि बिच बस म ही एक अभागी—

हाहाकार-सदृश हौं सूनी, सारे जगकी त्यागी ॥ सेल० ॥

मधुर गानकी तान जगतमहें गुँजि रही मन भाई ।  
तान बेसुरी तिहिमहें मैं ही उपज अनोखी पाई ॥ सेल० ॥

[ शहरयारका प्रवेश ]

शहर०—लैला, युद्धकी कुछ खबर सुनी है ?

लैला—( अविचलित भावसे ) किस युद्धकी ?

शहर०—भाई खुर्रमके विद्रोहवाले युद्धकी ।

लैला—नहीं, उसकी खबर तो मैंने नहीं सुनी ।

शहर०—भाई खुर्रम ( शाहजहाँ ) ने दिल्लीको घेर लिया था । परन्तु सेना-पति महाबतखाँसे द्वारकर वे फिर दक्खिनको भाग गये हैं ।

लैला—बेचारे खुर्रम ! तुम्हें भी कूट-चक्रमें डाला है ! तुम भी मारे जाओगे !  
उसके बाद परवेजकी और, स्वामी, फिर शायद तुम्हारी बारी आवेगी ।

शहर०—क्या कह रही हो लैला !

लैला—नहीं, तुम्हें न मारेंगे ।—तुम बेचारे बिलकुल गऊ हो । उनकी समझमें तुम्हारे प्राणोंसे बारूदका मूल्य अधिक है ।

शहर०—मुझे कौन मारेगा ? मुझे क्या कोई मारना चाहता है ?

लैला—यही बात सोच रही थी ।

शहर०—नहीं, मैं मरना नहीं चाहता लैला ! मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है । ऐसा आकाश, ऐसी हवा, ऐसी सूर्यकी किरणें, ऐसी चाँदनी—फूलोंकी महक, पक्षियोंका संगीत, नदीकी लहरें, पहाड़ोंकी ऊँचाई,—मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है ।

लैला—( गहरी अनुकंपाके भावसे ) बेचारे मेरे स्वामी ! नहीं शाहजादे, वे तुम्हें नहीं मारना चाहते । तुम्हें मारनेसे क्या होगा ?

शहर०—अगर मारना चाहें, तो तुम मुझे बचा लोगी ?

लैला—हाँ, मैं अपने हृदयमें छिपाकर तुम्हारी रक्षा करूँगी । तुम्हें कुछ डर नहीं है ।

[ दासीका प्रवेश ]

दासी—सन्नाट कहाँ हैं शाहजादी ?

लैला—क्यों ?

दासी—खबर देना है कि सम्राज्ञी रेवाका स्वर्गवास हो गया :

लैला—सम्राज्ञी रेवाका ?

दासी—हाँ, जनाब !

लैला—सो तो मैं पहले ही जानती थी । सम्राट् यहाँ नहीं आये ।

( दासीका जल्दीसे प्रस्थान )

लैला—अभागिनी पुत्र-शोकसे मर गई ! पृथ्वीपरसे एक गौरव उठ गया !  
एक प्रकाश, एक सुन्दर संगीत, एक प्रार्थना—

( धीरेसे प्रस्थान )

शहर०—ना, वे मुझे नहीं मारेंगे !

[ परवेजका प्रवेश ]

परवेज—शहरयार !

शहर०—कौन ? भाई परवेज ? तुम युद्धसे कब लौट आये ?

पर०—आज ही आया हूँ ।

शहर०—युद्धकी क्या खबर है ? खुर्रम कहाँ हैं ?

पर०—बरहमपुरके युद्धमें हारकर मेवाड़की तरफ भाग गये हैं ।

शहर०—मेवाड़की तरफ ?—क्यों ?

पर०—जान पड़ता है, मेवाड़के राणासे आश्रय माँगने । वे पिताके कठोर न्याय-विचारका हाल जानते हैं । इसके सिवा उनपर यह दारुण अभियोग लगाया गया है कि उन्होंने ही खुसरूकी हत्या कराई है । इसीसे उन्होंने पिताकी अधीनता स्वीकार करनेकी अपेक्षा राणाकी शरणमें जाना अधिक पसंद किया ।

शहर०—तुम जानते हो भाई, यह अभियोग बिल्कुल मिथ्या है । भाई खुसरूकी मौतके लिए खुर्रम दोषी नहीं हैं ।

पर०—तो फिर कौन दोषी है ?

शहर०—सुनोगे, दोषी कौन है ? ( चारों ओर देखकर धीरेसे ) दोषी है सम्राज्ञी नूरजहाँ ।

पर०—यह कैसे ? तुमने किस तरह जाना ?

शहर०—अच्छा, तो सुनो भाई ! एक दिन मेरी स्त्री तेजीके साथ उन्मत्त भावसे झोंधीकी तरह मेरे कमरेमें घुस आई। उसकी आँखें लाल थीं। उसने आते ही रूखे स्वरमें कहा 'कसम खाओ कि मैं सम्राट् नहीं बनूँगा।' मैं बीमारीकी हालतमें पलंगपर पड़ा हुआ था। उसने मेरा हाथ जोरसे पकड़कर कहा 'कसम खाओ, कसम खाओ, कसम खाओ, कसम खाओ,।' कम क़मसे उसका स्वर ऊँचेसे भी ऊँचा होने लगा। अन्तको वह स्वर मानों एक हाहाकारके समान सुन पड़ा। उसका सारा शरीर थरथराने लगा। मुझे डर मालूम हुआ। मैंने कसम खाई कि कभी सम्राट् न बनूँगा। तब वह मेरी छातीपर सिर रखकर रोने लगी। फिर शान्त होने पर उसने इस हत्याका इतिहास कहा।

पर०—उन्होंने जाना किस तरह ?

शहर०—उसकी माने यह दोष स्वीकार कर लिया है।

पर०—स्वीकार कर लिया है ! किसके आगे ?

शहर०—सम्राज्ञी रेवाके आगे और उसके बाद मेरी स्त्री लैलाके आगे।

पर०—इतना बड़ा कुचक्र ?

शहर०—भाई, सम्राज्ञीने मुझे भी अपने कुचक्रके बीच खींचा है, इससे मैं बहुत डर गया हूँ।

पर०—पर तुम्हारा अपराध क्या है ? जाओ, तुम जाकर सोओ। ठण्डकमें मत ठहरो। ( प्रस्थान )

शहर०—ओः, मेरा सिर घूम रहा है—( प्रस्थान )

### सातवाँ दृश्य

समय—प्रातःकाल

स्थान—उदयपुर

[ राणा कर्णसिंह, उनके सामन्त और शाहजहाँ खड़े हैं। ]

शाह०—राणा साहब, मैंने दक्खिनसे आकर पहले दिल्लीपर चढ़ाई की। वहाँ महाबतख़ाँसे हारकर मैं दक्खिनकी ओर भाग गया। इसके बाद नर्मदाके युद्धमें फिर महाबतख़ाँसे हारा और वहाँसे बंगालकी ओर भागकर मैंने उस देशको जीता।

कर्ण०—भागते भागते ?

शाह०—हाँ, राणा साहब ! वहाँसे भगाया जाकर मैं माणिकपुर गया। वहाँसे हारकर फिर दक्खिनको गया। वहाँ भी पीछा करके महाबतखॉने मुझे भागनेके लिए लाचार किया। फिर मैं बंगालको भागा। फिर रोहतासगढ़में परिवारको रखकर और अपनी सारी सेना लेकर मैंने बहरमपुरपर चढ़ाई की। महाबतखॉने वहाँ भी मुझे हराया।

कर्ण०—शाहजादा, तुम्हारी शक्ति अद्भुत है !

शाह०—बल्कि यह कहिए राणा साहब, कि महाबतखॉका युद्ध कौशल अद्भुत है।

कर्ण०—महाबतखॉके विरुद्ध आपने इतने दिन तक युद्ध किया, यह भी कुछ कम अद्भुत नहीं है।

शाह०—इसका कारण यही है कि मैंने सामने जाकर बहुत कम युद्ध किया है। नर्मदा-युद्धकी हारके बाद मैंने जंगली युद्ध करना शुरू कर दिया। उसमें भी हारकर अन्तको फिर सामनेसे युद्ध किया। किन्तु इस आखरी मर्तबा मैंने अपना सब कुछ गवाँ दिया। इसीसे आज निरुपाय होकर मैं मेवाड़के राणासे आश्रय माँगने आया हूँ।

कर्ण०—उदार-हृदय खुर्रमको मेवाड़ अपना अन्तिम-रक्त बिन्दु देकर बचावेगा। तुम्हारी क्या राय है सामन्तो ?

सामन्तगण—राणाकी जो राय है, वही हमारी भी है।

कर्ण०—देशके लिए प्राण देना महत्कार्य है, लेकिन धर्मके लिए प्राण देनेसे बढ़कर महत्कार्य और कुछ नहीं है।—आश्रितको प्राण देकर बचाना क्षत्रियका धर्म है,—क्या कहते हो सामन्तो ?

सामन्त०—अवश्य।

कर्ण०—शाहजादा खुर्रम, आप निश्चिन्त रहिए। मेवाड़ अपना सर्वस्व देकर भी आपकी रक्षा करेगा। यद्यपि मेवाड़ वह मेवाड़ नहीं है। मेवाड़का सर्वस्व नष्ट हो चुका है, उसकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी है, वह दुर्दशामें पड़ा है, मगर दुर्दिनमें भी मेवाड़ मेवाड़ है। जबतक मेवाड़में एक भी रातपूत रहेगा, तबतक आप अपने-

को निर्भय समझिए ।

शाह०—अगर सम्राज्ञी नूरजहाँकी सेना मेवाड़पर चढ़ाई करे ?

कर्ण०—शाहजादा, मैं कह चुका हूँ कि मेवाड़ अपना अन्तिम रक्तविन्दु तक देकर आश्रितकी रक्षा करेगा ।—भाई भीमसिंह, मेवाड़में जितने योद्धा हैं, उन्हें तैयार होनेकी आज्ञा दे रखो । शाहजादेके लिए सम्राट्से युद्ध करनेको तैयार हो रहो । सेना सज्जित करो ।

### आठवाँ दृश्य

स्थान—नूरजहाँका दरबार

समय—प्रातःकाल

नूर०—कैसा विश्वासघात है ! हारे हुए और मुगलोंको कर देनेवाले मेवाड़के राणा कर्णसिंह हमारे विरुद्ध होकर,—विद्रोही खुर्रमका पक्ष लेकर लड़े ।

महाबत०—वे कहते हैं कि आश्रितकी रक्षासे मुँह मोड़ लेना क्षत्रियका धर्म नहीं है !

जहाँ०—महाबतखॉ, तुम्हारी बहादुरीपर हम मोहित हैं । तुमने इस काशीके युद्धमें राणाकी सेनासे लड़कर और खुर्रमको हराकर मेरे सिंहासनकी रक्षा की है । तुमने मेरा गया हुआ पुत्र लौटा दिया है ।

( महाबतखॉ सिर झुकाकर यह साधुवाद प्रदण करते हैं । )

नूर०—तुमको हम धन्यवाद देते हैं सेनापति ।

( महाबतखॉ फिर पहलेकी तरह सिर झुकाते हैं । )

जहाँ०—जाओ महाबतखॉ, शाहजादा खुर्रमको सम्मानके साथ ले आओ । आज हम मंत्री, जमराव, सेनापति आदिके सामने उसकी अभ्यर्थना करना चाहते हैं ।

( महाबतखॉका प्रस्थान )

नूर०—सम्राट्, खुर्रमकी सादर अभ्यर्थना करना ही उचित है । मगर एकदम बिना न्याय-विचार किये छोड़ देना भी असंगत होगा । वे चाहे जो हों, विद्रोही हैं ।

जहाँ—मैंने उसे क्षमा कर दिया है । अब न्याय-विचारके लिए स्थान नहीं है ।

नूर०—सारा भारतवर्ष जानता है कि न्याय-विचारके समय सम्राट् पुत्र-कन्या

का खयाल नहीं रखते। उनका न्याय-विचार विधाताके विधानकी तरह तीक्ष्ण, ममताहीन और सरल है।

जहाँ०—न्याय-विचार ? वह समय गया नूरजहाँ, अब मैं सम्राट् नहीं हूँ। मुझमें जो सम्राट् था, वह स्नेहकी बहियाके वेगमें बह गया। मुझमें अब जो कुछ बाकी है वह पिता है। नूरजहाँ, यदि मैं न्याय-विचार करने जाता तो मैं भी न बच सकता और तुम भी न बचती।

नूर०—तब भी, जब तक आप सम्राट् हैं तबतक कमसे कम न्याय विचारके एक अमिनयकी ही सही, जरूरत है। उसके बाद आप चाहें तो खुर्रमको छुटकारा दे सकते हैं। जहाँपनाहके न्याय-विचारके ऊपर प्रजाका अगाध विश्वास है। उसे इस समय इस तरह विचलित होने देना उचित नहीं। एक बार वह खुले आम होना चाहिए। उसके बाद छोड़ दीजिएगा, कुछ दर्ज नहीं।

जहाँ०—अच्छी बात है। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।

नूर०—और मैं खुद उस न्याय-विचारके करनेकी आज्ञा चाहती हूँ; सिर्फ अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए। खुर्रमने अपने पत्रमें सम्राट्के निकट मुझे दोषी ठहराया है,—मेरा अपमान किया है, इसलिए मर्यादाकी रक्षाके लिए उसे छोड़नेका सम्मान सम्राट् मुझे दें।

जहाँ०—अच्छी बात है, लेकिन उस समय मैं मौजूद रहूँगा !

नूर०—( मुस्कराकर ) देखती हूँ, नूरजहाँके ऊपर सम्राट्को पूरा विश्वास नहीं है। अच्छा, ऐसा ही हो।

जहाँ०—लो, वह खुर्रम आ गया !

[ मन्त्री, उमराव, सेनापतिगण, महाबतखों आदिके साथ शाहजहाँ दरबारमें प्रवेश करता है और सम्राट्को प्रणाम करता है। सम्राट् सिंहासनसे उठते हैं; परन्तु नूरजहाँ उनकी ओर कठोर दृष्टिसे देखती है और वे फिर सिंहासनपर बैठ जाते हैं। ]

जहाँ०—खुर्रम, इस राजधानीमें हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

शाह०—( सम्राट्की ओर देखकर ) सम्राट्का अनुग्रह !

नूर०—तब भी तुम अपराधी हो; पहले तुम्हारा विचार होगा।

शाह०—मेरा विचार होगा !

नूर०—हाँ, तुम्हारा विचार होगा। तुम्हारे विरुद्ध क्या क्या अभियोग हैं, सो तुम जानते हो ?

शाह०—नहीं। ( विस्मयके साथ प्रश्नमयी दृष्टिसे जहाँगीरकी तरफ देखता है। )

नूर०—तो सुनो। तुम्हारे विरुद्ध पहला अभियोग यह है कि तुमने बंदरके राजाके द्वारा अपने भाई खुसरूका खून कराया है। यदि इस बातको तुम अस्वीकार करो, तो मैं राजाको साक्षीके तौरपर यहाँ बुला सकती हूँ। दूसरा अभियोग यह है कि तुमने अपने पिताके विरुद्ध विद्रोह किया है। जान पड़ता है, इसे तुम अस्वीकार नहीं करोगे। तीसरा अभियोग यह है कि तुमने अपनी डाकुओंकी सेना लेकर सारे भारतवर्षमें हलचल मचा रखी है। इन बातोंकी कैफियत चाहिए।

शाह०—सम्राट्, कैफियत तो मैंने आपको लिख भेजी थी। यहाँ उसके फिर दोहरानेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

नूर०—नहीं, जरूरत है।

शाह०—सम्राट् !—

जहाँ०—खुर्रम, तुमने अपने पत्रमें जो कैफियत लिख भेजी थी, उसे ही तुम्हें इस आम दरबारमें दोहरा देना चाहिए।

( शाहजहाँ घड़ी-भर सम्राट्की ओर ताकता रहता है, वे सिर झुका लेते हैं )

शाह०—( धीरेसे ) पहले मैं जानना चाहता हूँ कि मुझे कैफियत किसके आगे देनी होगी ? भारतका शासक इस समय कौन है ?—सम्राट् अकबरके पुत्र जहाँगीर या शेरशौकी विधवा नूरजहाँ ?

नूर०—खुर्रम, तुम अपराधी हो। हाथ जोड़कर खड़े होना ही तुम्हें सोहता है, व्यंग करना नहीं।

शाह०—मैं इस औरतसे जवान लड़ाना नहीं चाहता। ( जहाँगीरसे ) मैं जानना चाहता हूँ कि आप क्या सचमुच ही मुझसे कैफियत चाहते हैं ?

जहाँ०—हाँ, चाहता हूँ।

शाह०—( दम-भर चुप रहकर ) तो अपराध चना करके यहाँ बुला भेजना क्या मुझे कैद करनेके लिए एक भारी षड्यन्त्र ही था ?

नूर०—खुर्रम, तुम किससे बात कर रहे हो ?

शाह०—जानता हूँ नूरजहाँ, बात कर रहा हूँ अपने पिताके साथ ।—अन्ना, मैंने विद्रोह किया है । किन्तु सामने लड़कर ही किया है, धोखा देकर नहीं किया । हार गया हूँ; लेकिन, इस आम दरबारमें कहता हूँ कि अगर मेरे विरुद्ध वीर महा-बतखॉं न होते तो मैं इस औरतको इस सिंहासनसे घसीटकर अस्थि-कुण्डमें पटक देता और स्वयं सम्राट् जहाँगीर खड़े खड़े यह देखते रहते ।

जहाँ०—( क्रुद्ध होकर ) खुर्रम, अपनी ज़बान बंद करो ।

शाह०—आपकी आज्ञा सिर-आँखोंपर है ।

नूर०—( जहाँगीरको क्रुद्ध देखकर सुयोग पाकर ) खुर्रम, यह औरत ऐसी अवज्ञाकी पात्र नहीं है, यह मैं तुम्हें अभी दिखा देती हूँ । मैं तुम्हें तुम्हारे सब अपराधोंके लिए एक साल कैदकी सजा देती हूँ । ( महाबतखॉंसे ) सेनापति, खुर्रमको गिरफ्तार करो ।

महा०—जमा कीजिए बेगम साहबा, शाहजादेको अभय देकर और मुट्ठीमें करके फिर कैद करना, इस धोखेबाजीमें महाबतखॉं शरीक नहीं हो सकता ।

नूर०—महाबत, तुम नौकर हो । न्याय-अन्यायका विचार करना तुम्हारा काम नहीं है । तुम्हारा काम है, हमारी आज्ञाका पालन करना ।

महा०—मैं उस आज्ञाका पालन करना अस्वीकार करता हूँ ।

नूर०—अस्वीकार करते हो ! तो तुम भी विद्रोही हो !—सिराहियो, महाबत-खॉंको गिरफ्तार कर लो ।

महा०—कर लो; जिसमें साहस हो, मुझे गिरफ्तार करो । बीस बरससे तुम्हारा सेनापति हूँ । बीस बरससे अनेक बार तुम लोगोंको युद्ध-भूमिमें ले गया हूँ और विजय-गर्वके साथ वहाँसे लौटा लाया हूँ । जिसकी इच्छा हो, वह मुझे गिरफ्तार करो ।

( सब चुप खड़े रहते हैं । )

नूर०—क्या किसीकी भी हिम्मत नहीं है ?

महा०—( जहाँगीरसे ) सम्राट् आप मुझे बाँध लीजिए मैं कुछ नहीं कहूँगा ।

( हाथ आगे बढ़ा देता है । )

जहाँ०—महाबतखॉं, तुम्हें बाँधनेकी जंजीर अब भी तैयार नहीं हुई । जाओ महाबत, मैं तुम्हें माफ करता हूँ ।

नूर०—( खड़े होकर ) कभी नहीं, सम्राज्ञी नूरजहाँ या तो इस समुद्रमें डूबेगी और या इस समुद्रकी छातीको पैरोंसे रोंधकर चली जायगी । वह इसकी लहरोंके द्वारा इधर-उधर पटकी जानेके लिए जीती नहीं रहेगी । महाबतखॉंको गिरफ्तार करनेकी ताकत किसीमें नहीं है तो मैं गिरफ्तार कहेँगी । देखूँ, भारतसम्राज्ञी नूर-जहाँको रोकनेका ताव किसमें है ! ( सिंहासनसे उतर पड़ती है । )

[ लैला तेजीसे प्रवेश करती है । ]

लैला—वह ताव, वह ताकत मुझमें है ।

( सब सजाटेमें आ जाते हैं । )

लैला—सम्राट्, इस सिंहासनपर एक अपाहिजकी तरह बैठकर आप सम्राज्ञीके स्वेच्छाचारको देख रहे हैं और कुछ नहीं कहते ? पुरुषकी इतनी अधोगति ! धिक्कार है ! ( शाहजहाँकी तरफ फिरकर ) शाहजादा, स्वयं सम्राट्ने तुम्हें क्षमा कर दिया है, इसलिए तुम छुटकारा पा चुके और महाबतखॉं, तुमने अपने योग्य ही काम किया है । जाओ, तुम भी छुटकारा पा गये हो; सम्राट्ने खुद कह दिया है ।—और नूर-जहाँ, मैं तुमको इस आम दरबारमें शाहजादा खुसरूकी हत्याके अपराधमें अभियुक्त करती हूँ । यदि तुमसे बन सके, तो अस्वीकार करो ।

( दोनों जनी दो शेरनियोंकी तरह एक दूसरीको ज्वालामयी दृष्टिसे देखती हैं । )

— — —

## चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—मंत्री आसफखी के घर की बाहरी बैठक

समय—प्रातःकाल

[ शाही मुसाहब बातचीत कर रहे हैं ]

१ मु०—देखा ?

२ मु०—क्या ?

१ मु०—मैंने जो कहा था वही हुआ कि नहीं ?

२ मु०—क्या कहा था ?

१ मु०—कहा था कि सम्राट् ने साम्राज्य की ओर करवट ली है, पर अब शीघ्र ही उधरसे भी करवट बदलेंगे ।

३ मु०—हाँ, यह बात तो तुमने जरूर कही थी ।

४ मु०—मेरा प्रदेशमें जैसे सुना जाता है कि सूर्य जब अस्त होते हैं तब छः महीने के लिए, वैसे ही हमारे सम्राट् ने भी इस समय राज-काजसे छुट्टी ले ली है ।

१ मु०—हाँ, इस समय असलमें नूरजहाँ का राज्य है ।

३ मु०—चाहे जो कहो, सम्राज्ञी के राज-कालमें हम एक तरहसे सुखसे हैं ।

१ मु०—सुखसे हैं ? सो कैसे ?

२ मु०—देश-भरमें दिन-रात नाच-गान हुआ करता है,—शराब की बोतलें ढला करती हैं ।—नाचने-गाने का और मदिरा का प्रवाह बह रहा है ।

४ मु०—इस प्रवाहसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, अगर इस प्रवाहके ऊपर नीच-धीचमें लहरें न उठतीं ।

२ मु०—कैसे ?

४ मु०—यही कि उस दिन हुकम जारी हुआ कि सम्राट् की अनुमति के बिना कोई मुसाहब शराब नहीं पी सकेगा । और अगर वे आज्ञा दें, तो शायद सभी को शराब पीना पड़े ।

३ मु०—यह लो, सब मिट्टी कर दिया । वह बन्दरका राजा आ रहा है ।

२ मु०—इसी राजाने खुस्रूकी हत्या की है, क्यों ?

१ मु०—हाँ ।—बड़ा ही पाजी है ।

४ मु०—ऐ, इसने आकर हमारा सारा मजा किरकिरा कर दिया ।

३ मु०—मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह साला सम्राट्के पुत्रकी हत्या करके भी बचा हुआ है ।

४ मु०—केवल बचा हुआ ही नहीं है,—बढ़ भी रहा है ! इसकी तोंद नहीं देखते ?

३ मु०—साला राजासे महाराजा हो गया है ।

४ मु०—होगा क्यों नहीं ! यह शिवको छोड़कर दुर्गाका ध्यान जो कर रहा है । इसके ऊपर सम्राज्ञीकी बड़ी कृपादृष्टि है ।

२ मु०—अच्छा, इस राजाने राजपुत्रकी हत्या कर डाली, और सम्राट्ने इससे कुछ नहीं कहा ?

३ मु०—अजी हुसैन, तुम बल्कि—मगर—निश्चय ही राजनीतिके बारेमें कुछ नहीं समझते !

३ मु०—अजी कृष्णदास, तुम तो सारे ही क्रियाविशेषण एक सॉसमें कह गये ।

[ बन्दरके राजाका प्रवेश ]

३ मु०—महाराजकी जय हो !

राजा—हैं हैं हैं,—आप लोगोंकी कृपा है ! आप लोगोंकी कृपा है !

३ मु०—महाराजने खुस्रूकी हत्या करके सरकारसे जो 'महाराजा' का खिताब पाया है उसे हम लोग अदब करते समय भी नहीं भूल सकते; आपने देखा महाराज ?

४ मु०—राजासे एकदम महाराजा ! कैसी छल्लोंग मारी है ! बंदरके राजाके योग्य ही छल्लोंग है !—( और मुसाहबोंसे ) मैंने पहले ही कह दिया था कि ये महाराजा होंगे ।

राजा—हैं हैं हैं हैं—

१ मु०—देखो दुम हिला रहा है । देखो, दुम हिला रहा है ।—

२ मु०—ठीक कुत्तेकी तरह दुम हिला रहा है ।

४ मु०—यह उपमा तुमने बहुत ठीक दी हुसेन—

३ मु०—शाहजादा खुर्रमने कहा है कि खुसरूकी हत्या करके आपने उनका जैसा उपकार किया है, वैसा उनका सगा भाई भी नहीं कर सकता !

राजा—हैं हैं हैं हैं,—ऐसा कौन बड़ा काम किया है,—ऐसा कौन बड़ा काम किया है । यह तो एक साधारण कर्त्तव्य-मात्र था, साधारण कर्त्तव्य-मात्र था ।

१ मु०—कर्त्तव्य-मात्र था !—पाजी !

( लात मारनेके लिए दौड़ता है । राजा जान लेकर भागता है । )

३ मु०—खूब झपटे थे ! बंदरके राजासे चालाकी !

२ मु०—अब अपनी गर्दन बचाओ । जानते हो वह सम्राज्ञीका जानवर है ।

१ मु०—उसे मारकर मैं अपनी गर्दन देनेको तैयार हूँ । साला पाजी ! जंगली सियार !

४ मु०—नहीं, जंगली सियार नहीं । वह कुत्ता है !—वाह, कैसी अच्छी उपमा तुमने दी है हुसेन, एकदम ठीक कुत्ता है !

२ मु०—वे मन्त्रीजी आ रहे हैं ।—

[ आसफका प्रवेश ]

४ मु०—क्यों मन्त्रीजी, बादशाहने आज कुछ नया हुक्म जारी किया है ?

आसफ—हाँ, किया है । बादशाहका हुक्म है कि आज रातको आप लोग खूब शराब पियें और आनन्द मनावें ।

४ मु०—सुभान अल्लाह ! इस हुक्मके माने हैं, और वे साफ समझमें आ रहे हैं ।

आसफ—मगर—

४ मु०—देखो, इसमें अगर-मगर करोगे, तो मैं चिल्ला दूँगा ।

आसफ—‘मगर’ इसके भीतर नहीं, इसके बाहर है ।

२ मु०—वह ‘मगर’ क्या है ?

आसफ—लेकिन जान पड़ता है, आप लोग उस ‘मगर’ को पसंद न करेंगे । लेकिन वह ‘मगर’ खूब है ।

३ मु०—कैसे ?

४ मु०—‘मगर’ है या कुछ और ?

आसफ—‘मगर’ है ।

३ मु०—तो वह ‘मगर’ कह ही डालो । जोरसे खोंड़ा चलाओ । हम गर्दन झुकाये हुए हैं ।

आसफ०—तो वह ‘मगर’ सुनो । सम्राट्ने खुद कान छिदाये हैं, और कुण्डल पहने हैं । साथ ही हुक्म दिया है कि सब मुसाहबोंको कान छिदाकर कुण्डल पहनने होंगे । नहीं तो आप लोगोंको दरबारमें जानेका हुक्म नहीं है ।

२ मु०—सो कैसे ?

आसफ—कैसे क्या ! ऐसे ही ।

३ मु०—ना ना, दिल्लगी है । क्यों आसफ, दिल्लगी है ?

आसफ—तो लो यह बादशाहका आज्ञापत्र देखो ।

( आज्ञापत्र दिखाता है । )

१ मु०—यह लो,—कहना था कि नहीं ? सम्राट् ऐसे अपशर्ष न होते तो वह पाजी राजा महाराजा हो जाता ?

२ मु०—कभी नहीं ।

१ मु०—यह तो बहुत ही गड़बड़ हुआ । हम अगर कान छिदाकर कुण्डल-बाली-बाले पहनना शुरू करेंगे, तो घरके भीतर-वालियाँ क्या करेंगी ?

२ मु०—जान पड़ता है, कानमें कलमें खोंसेंगी ।

१ मु०—देखना है कि वह हुक्म भी कब जारी होता है ।

२ मु०—नहीं, यह तो बेकायदे मनमाना हुक्म है !

३ मु०—तो फिर अब और क्या होगा । चलो, कान छिदावें । सम्राट्की आज्ञा ही जो है ।

१ मु०—कभी नहीं । हम लोग विद्रोह करेंगे । गुलाम लोग ही कान छिदाते हैं,—यह बड़ा भारी अपमान है ।

४ मु०—हाँ जा, बलकुल मनमाना हुक्म है ।

२ मु०—बेशक ।

आसफ—क्या करेंगे, निश्चय कर लिया ?—कान छिदावेंगे, या विद्रोह करेंगे ?

१ मु०—तुम ठट्ठा कर रहे हो । सम्राट् के मंत्री होकर एकदम—

२ मु०—हाँ, मंत्री हुए हो सम्राट् के साले होने के जोरसे । मैं भी अगर सम्राट् का साला होता !

आसफ—पर साले बनने में देर कितनी-सी लगती है !

## दूसरा दृश्य

स्थान—नूरजहाँ का कमरा

समय—रात

[ नूरजहाँ अकेली खड़ी है । ]

नूर०—यह भी एक नशा है । करीब-करीब क्षमता के शिखर पर पहुँच गई हूँ, तथापि और भी ऊपर चढ़ना चाहती हूँ । मगर नूरजहाँ, सावधान ! तुम आज उस शिखर की कगार पर खड़ी हो । सावधान !—लेकिन यह क्यों ? सावधान किसके लिए ? भय काहेका है ? किसके लिए सोचूँ ? मेरी कन्या,—जिसके लिए इतनी चेष्टा की, इतना कुचक्र रचा, वह भी मेरा विरोध कर रही है । अब किसके लिए दुविधामें पहुँचूँ ? आज सब बन्धन काटकर बाहर निकली हूँ । इस विशाल संसारमें आज मैं अकेली हूँ । अब किसका डर है ? काहेके लिए डर है ?—दो, घोड़ा दौड़ा दो नूर-जहाँ ! गिरने की परवाह मत करो ! या तो जय होगी, या मृत्यु होगी । अब तो मैं भी अपने को लौटानेमें असमर्थ हूँ ।

[ आसफ और जहाँगीर का प्रवेश ]

जहाँ०—नूरजहाँ, मंत्री का खयाल है कि यदि महाबतख़ाँसे कैफियत माँगी जायगी, तो वे कैफियत न देंगे ।

नूर०—क्या करेंगे ?

आसफ—सम्राट् का हुक्म न मानेंगे, शायद विद्रोह करेंगे ।—सम्राज्ञी, राज्य एक परिवार के तुल्य है । राजा पिता है और प्रजा-जन उसकी सन्तान हैं । राजा अगर उनके साथ स्नेह का व्यवहार करता है तो वे भी उसपर स्नेह रखते हैं । अगर राजा उनकी नाकमें दम करता है, तो वे भी राजा को तंग करते हैं ।

नूर०—करें, इससे मैं नहीं डरती। मैं जानती हूँ, विद्रोहीका सिर कैसे कुचलना चाहिए।

जहाँ०—नूरजहाँ, सिपाहियोंके ऊपर महाबतखॉका बहुत बड़ा प्रभाव है। उसे देखकर तुमने ही प्रस्ताव किया था कि उसे सेनापतिके पदसे हटाकर बंगालका सूबेदार बना दो। इसीसे मैंने उसे शाहजादा परवेज़की मातृहतीमें बंगालका सूबेदार बनाकर भेज दिया। अब देखता हूँ कि तुम्हें उसमें भी आपत्ति है।

नूर०—आपत्तिका कारण न होता तो मैं कभी आपत्ति न करती जहाँपनाह ! महाबत उबीसा जीतकर सौसे अधिक हाथी ले गया है। लेकिन अबतक उन्हें आगरे भेजनेकी जरूरत ही उसने नहीं समझी। लूटका धन सम्राट्की सम्पत्ति है,—सेनापतिकी नहीं।

आसफ—हाथी भेजनेका समय अभी बीत नहीं गया सम्राज्ञी !

नूर०—बीत नहीं गया। आसफ, तुम मन्त्रीके पदका अपमान कर रहे हो। मैं यहाँ बैठ-बैठे देख रही हूँ कि महाबतखॉ सम्राट्की प्रभुताको बिना किसी बाधाके अप्राप्त कर रहा है, और मौका पाकर बंगालमें विद्रोहके बीज बो रहा है।

जहाँ०—यह असंभव है।

नूर०—असंभव कुछ नहीं है, जहाँपनाह ! केवल एक बात असंभव है—मरकर फिर लौट आना ! महाबतखॉ सम्राट्के सामने दर्पके साथ कह सकता है कि 'जिसमें ताकत हो, मुझे कैद कर ले' तब भी जहाँपनाह महाबतखॉके नामपर जान देते हैं और सुबह-शाम उसका नाम जपा करते हैं। इस बातको महाबतखॉ जानता है कि उसके ऊपर जहाँपनाहको गहरा विश्वास है और इसीलिए वह उसके योग्य व्यवहार करता है।

जहाँ०—मैं मनुष्यपर विश्वास करके जितना ठगा गया हूँ अविश्वास करके उससे अधिक ठगा गया हूँ, नूरजहाँ !

नूर०—जहाँपनाहकी मर्जी। लेकिन मैं एक बात कहे रखती हूँ कि खुर्रमके विद्रोही होनेपर ही सम्राट् केलेके पत्तेकी तरह काँपने लगे थे, अगर महाबतखॉने विद्रोह किया, तो उस भारी आँधीमें खड़े भी न रह सकेंगे।

जहाँ०—प्रियतमो, साम्राज्यमें एक शान्ति विराज रही है, उसे नाहक क्यों खेच रही हो ?

नूर०—जहाँपनाह, वायुका बिलकुल ही न चलना आँधीकी सूचना देता है—  
आप जानते हैं ?

जहाँ०—अच्छा, तो तुम क्या करना चाहती हो ?

नूर०—मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि महाबतख़ाँको बंगालसे हटाकर पंजाबमें भेज दिया जाय, और यह कोई बड़ा भारी परिवर्तन नहीं है। लेकिन हाँ, हमारी राज-  
धानी लाहौर उसके अधिकारसे बाहर रहेगी।

आसफ—महाबतख़ाँ आत्माभिमान रखनेवाला आदमी है; वह इस अपमान-  
को कभी नहीं सहेगा।

जहाँ०—( नूरजहाँसे ) और इससे लाभ ही क्या होगा ?

नूर०—उसे उसकी शक्तिके घेरेसे हटाना ही मेरा उद्देश्य है। पंजाबमें वह हम  
लोगोंकी आँखोंके सामने भी रहेगा।

जहाँ०—तुम्हारा जो जी चाहे वही करो। मैं सोच नहीं सकता और सोचना  
चाहता भी नहीं।

नूर०—अच्छी बात है।—मन्त्री, तुम उसके पास आज्ञा भेजनेका बन्दोबस्त  
करो। मैं अपने हाथसे आज्ञापत्र लिखे रखती हूँ।

आसफ—सम्राट्की क्या आज्ञा है ?

जहाँ०—जाओ आसफ, —क्यों हैरान करते हो ?

( आसफका चुपचाप प्रस्थान )

जहाँ०—प्रिये, अपने इस साम्राज्यका शासन तुम करो। अब मेरा साम्राज्य  
सुरा, सौन्दर्य और संगीत चलने दो।

नूर०—जो आज्ञा जहाँपनाह !—बाँदी !

[ दासीका प्रवेश। नूरजहाँ उसे इशारा करती है। वह चली जाती है। इतने-  
हीमें पर्दा एकदम उठ जाता है और अपूर्व उज्ज्वल आभूषणोंसे भूषित नाचनेवालियों  
प्रकाशके एक उच्छ्वासकी तरह सम्राट्के सामने आ जाती हैं। ]

नूर०—देखिए जहाँपनाह !—

जहाँ०—बस, यही मेरा साम्राज्य है।—परियो,—नाचो—गाओ !

[ बाजे बजते हैं। नाच शुरू होता है, मदिरा आती है। नूरजहाँ अपने हाथसे

रत्न-पात्रमें मदिरा ढालकर जहाँगीरको देती है और वह पीता है । ]

जहाँ०—मुखके कैसे अच्छे भरनेका आविष्कार किया है ! आनन्दका कैसा सुन्दर यन्त्र तैयार किया गया है ! गाओ ।

नाचनेवालियों गाती हैं—

बहार—जल्द तिताला

आओ हिल-मिलकर नाचै-गावें ।

गहरी गरज मृदंग बजें, पग धुंधरू घने बजाय रिभावें ॥ आओ०

हम सब सुन्दर हृदय-हारिणी नट-नारी कौशल दरसावें ।

हास्य-लास्यसे हाव-भावसे चिन्ता चित्तकी दूर भगावें ॥ आओ०

ताल-ताल संगीत उठे, फिर घन स्वर-जाल गानके छावें ।

क्रमसे बनकर शोक विनीरव तान, शून्यमें लय हो जावें ॥ आओ०

जहाँ०—कैसा मधुर संगीत है, नूरजहाँ ! यह वासनाको जगा देता है, मगर उसे पूर्ण नहीं करता; नन्दन-वनकी सुगन्ध लाकर उसे लंबी साँसमें उड़ा ले जाता है; सौन्दर्यका पर्दा खोलकर उसे घने मेघसे घेरकर लिये चला जाता है ! दवाकी तरह उड़कर हाहाकारके साथ चारों ओर फैल जाता है ।

[ मगर नूरजहाँ न तो जहाँगीरकी बात ही सुन रही है

और न नाच ही देख रही है । वह दूरपर शून्यकी

ओर एकटक ताक रही है । ]

जहाँ०—संगीत,—जिसकी तान मानों एक प्यास है; जिसका उल्लास जैसे एक आत्तप है; हास्य जैसे एक हाहाकार है; आलिंगन जसे एक छुरा है; अमृत जैसे विष है; स्वर्ग जैसे नरक है;—गाओ, फिर गाओ ।

नाचनेवालियों फिर गाती हैं—

लावनी

हम आकर यों ही यहाँ चली जाती हैं ।

प्राकृत प्रकाशकी रंगत दिखलाती हैं ॥

हम सब प्रकाशकी तरह दमक जाती हैं ।

हम चिमल हँसीकी तरह चमक जाती हैं ॥

हम कुसुम-गंधकी तरह भमक जाती हैं ।  
 हम मद-विकारकी तरह भमक जाती हैं ॥  
 हम सब तरंगकी तरह उमड़ आती हैं । हम आकर०  
 हम अरुण गगनमें स्वर्ण-किरणसे चढ़तीं ।  
 आनन्द-मार्गमें विचर-विचरकर बढ़तीं ॥  
 हम फिर सन्ध्याको उतर वहाँसे आतीं ।  
 बस रवि-किरणोंके साथ अस्त हो जातीं ॥  
 हम स्निग्ध-कान्तियुत शान्ति-गान गाती हैं ॥ हम आकर०  
 हम शरद-इन्द्रधनु-वर्ण दिखाकर छलतीं ।  
 हम ज्योत्स्नाकी-सी अलस चालसे चलतीं ॥  
 हम चपलाकी-सी चमक निगाहें ढालें ।  
 हम हँसकर बसकर चित्त मदन-मद ढालें ॥  
 हम आती हैं, पर हाथ नहीं आती हैं । हम आकर०  
 हम श्यामलतामें शिशिर-कणोंमें वनमें ।  
 हम इन्द्रधनुषमें नील गगनमें घनमें ॥  
 हम गान-तानमें कुसुम-गन्ध अभिनवमें ।  
 हम चन्द्र-सूर्यकी किरणोंमें, यों सबमें ॥  
 हम स्वप्नराजसे आय बही जाती हैं । हम आकर०

[ एकाएक हलका-सा अँधेरा छा जाता है, दमभरमें नाचनेवालियाँ गायब हो जाती हैं । नेपथ्यमें बहुत ही धीमे स्वरमें बाजा बजता है और धीरे-धीरे मंद हो जाता है । ]

अहाँ०—नूरजहाँ !

नूर०—जहाँपनाह !

जहाँ०—तुम देवी हो या मानवी ?

नूर०—मैं दानवी हूँ ।

—————

## तीसरा दृश्य

स्थान—बंगालमें महाबतख़ाँका घर

समय—दोपहर

[ महाबतख़ाँ चिन्तित होकर टहल रहे हैं । ]

महा०—मैं सगरसिंहका पुत्र, राणा प्रतापसिंहका भतीजा, महाबतख़ाँ विधर्मी मुग़लोंका दास हूँ । धर्म छोड़ा था शुरु जवानीकी उच्च आशाओंके नशेमें प्रभुत्व और राज-सम्मान-लाभके लोभमें । वह प्रभुत्व,—सम्मान मैंने पाया भी । मैं मुगल-सेनाका प्रधान सेनापति हुआ भी । सब मुगल-सेनापति मुझे मानते थे । वे समझते थे, मानों मैं उनका सूर्य हूँ, मानों मेरी शक्ति एक दैवी शक्ति है, मानों मेरा हर एक कार्य ईश्वरकी प्रेरणा है । इसीसे सम्राज्ञी नूरजहाँ मुझसे डरती हैं । इसीसे उन्होंने मुझे सेनापतिके पदसे हटाकर बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा है । इतना बड़ा प्रभुत्व मैंने पाया । किन्तु कहाँ, मैंने कैसे क्या पाया । देश और धर्म छोड़कर,—स्नेहके बन्धनको तोड़कर,—केन्द्रसे च्युत होकर,—मैं उद्भ्रान्त धूमकेतुकी तरह दौड़ता हूँ,—कहाँ ? किस लक्ष्यकी ओर ? अपने लिए,—देशके लिए कुछ किये बिना शायद सुख अपूर्ण ही रह जाता है; एक असीम आकांक्षा बनी रह जाती है ।—लो, वे शाहजादा आ रहे हैं ।

[ परवेशका प्रवेश ]

महा०—बन्दगी शाहजादा ।

पर०—महाबतख़ाँ, अब्बा तुमपर बहुत नाराज़ हैं । उन्होंने तुम्हें बंगालके सूबेसे बदलकर पंजाबका शासन-कर्त्ता बनाया है ।

महा०—यह क्या !—पंजाबका शासन-कर्त्ता ?

पर०—हाँ, पंजाबका । मगर लाहौर तुम्हारे अधिकारमें नहीं रहेगा ।

महा०—यह क्या ? इसका कारण ?

पर०—कारण कुछ नहीं । तुम्हें यह चिट्ठी दिखा देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है । लो, देख लो । ( पत्र दिखलाता है । )

महा०—( पत्र पढ़कर ) आश्चर्य है शाहजादा, आपने इसका कोई कारण अनुमान किया है ?

पर०—नहीं ।—आदाब महाबतखॉ ! ( प्रस्थान )

महा०—समझ गया । यह भी उसी औरतकी हरकत है । सेनापतिके पदसे हटाकर, मेरे समर-शिष्य परवेजका अधीन कर्मचारी बनाकर भी उसकी बदला लेनेकी तीव्र प्रवृत्ति चरितार्थ नहीं हुई । वह मुझे सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे उतारते जाना चाहती है,—नूरजहाँ ! तुम्हारे दिमागमें उच्च आशाका विष व्याप गया है । तुम अपने चारों ओर ऐसी आग सुलगा रही हो जिसमें खुद ही जल मरोगी । अपने हाथों अपनी कब्र तैयार कर रही हो । तुम्हारा विनाश अब बहुत दूर नहीं है ।

### चौथा दृश्य

स्थान—लाहौरके महलका अन्तःपुर

समय—प्रातःकाल

[ नूरजहाँ अकेली कीमती पलंगपर मखमलके तकियेके सहारे बैठी है । ]

नूर०—मेरा जीवन एक गहरा और खाली गढ़ा है । जल नहीं है, इसीसे उसे रक्तसे पूर्ण कर रक्खा है । खाली गढ़ेकी अपेक्षा वह भी अच्छा है । मेरा वर्तमान एक बड़ा भारी निराशा है । इसी कारण मैंने उसे एक विराट् हाहाकारसे व्याप्त कर रक्खा है । नहीं तो इस निराशाका सचाटा असह्य हो उठता । मैं मानों अपने आपसे दूर भागनेके लिए दौड़ रही हूँ । मैं विकारकी गर्मीमें सोचती हूँ और अंकुश-ताबनाके उन्मादमें काम करती हूँ ।

[ आसफका प्रवेश ]

नूर०—क्या खबर है आसफ ?

आसफ—महाबतखॉ खुद आये हैं । वे शिविरके बाहर सम्राट्से मिलनेकी राह देख रहे हैं ।

नूर०—मुलाकात नहीं होगी । जाकर कह दो कि मुलाकातकी कोई जरूरत नहीं है ।

आसफ—यह क्या बेगम ? वे सिर्फ मुलाकात करना चाहते हैं, सो भी—

नूर०—चुप । मैं तुमसे सलाह नहीं लेना चाहती । मेरी आज्ञाका पालन करो । महाबतखॉसे कहो, सम्राट्की आज्ञा है कि तुम इसी घड़ी पंजाबको रवाना हो जाओ । मुलाकातकी जरूरत नहीं है ।

आसफ—भारतवर्षका वर्तमान इतिहास एक खीके बाधारहित स्वेच्छाचारक इतिहास बनता जा रहा है ।

[ जहाँगीरका प्रवेश । आसफ बन्दगी करता है । ]

जहाँ०—क्या खबर है आसफ ?

आसफ—सम्राज्ञीके पास आज्ञा लेने आया था ।

जहाँ०—किस बारेमें ?

आसफ—सम्राज्ञीकी यह आज्ञा देख लीजिए तो फिर और कुछ कहनेकी जरूरत न होगी ।

( जहाँगीर पत्र पढ़कर चुपचाप लौटा देता है । )

आसफ—जहाँनगद, इस आज्ञाका पालन करना होगा ?

जहाँ०—अवश्य ।—जाओ ।

( आसफका प्रस्थान )

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने बड़ी ही तेजीसे घोड़ा दौड़ा दिया है !

( नूरजहाँ प्रवेश करके सम्राट्को बन्दगी करती है । )

नूर०—सम्राट् यहाँ हैं !

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने महाबतको मुझसे मिलने भी नहीं दिया ?

नूर०—नहीं, क्यों नहीं मिलने दिया, सुनिष्ठा ? पढ़िए यह महाबतखोंका पत्र ।

( जहाँगीर पत्र लेकर पढ़ता है । )

नूर०—उसने अपने दामादके हाथ यह पत्र भेजा था । इतनी उसकी मजाल ! जैसे उसके दामादको सिर मुड़ाकर, गधेपर चढ़ाकर, उसीके पास भेज दिया है ।

जहाँ०—यह न करनेसे भी काम चल सकता था !

( पत्र लौटा देते हैं । )

नूर०—काम चल सकता था ? साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा ऐसी बात कह सकती है कि सम्राट् उसके प्राणोंकी रक्षाके लिए क्या जामिन देते हैं ? वह इस तरहका दावा और इस तरहकी भाषाका व्यवहार करता है, इसका कारण यही है कि सम्राट्ने उसे बहुत अधिक मुँह चढ़ा रक्खा है ।

जहाँ०—नूरजहाँ, तुम तो साम्राज्यके सम्बन्धमें मुझसे इस तरह बातचीत करती हो कि मैं जैसे दूध-पीता बच्चा हूँ, और तुम जैसे द्वितीय बहरामख़ाँ हो। नूर-जहाँ, महाबतख़ाँ साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा नहीं है। वह सज्जन, आत्माभिमानी और क्षमताशाली है,—उसमें ये तीन भयानक गुण हैं। याद रखो।

नूर०—अगर सम्राट्का मुझपर विश्वास न हो तो राज्यकी बागडोर सम्राट् फ़िर अपने हाथमें ले लें।

जहाँ०—नहीं प्रिये, मैंने जो छोक दिया, उसे फिर नहीं लौटा लेना चाहता। साम्राज्य मिट्टीमें मिल जाय, मुझे कुछ भी क्षोभ न होगा।

( नूरजहाँ सच्चाटेमें आकर खड़ी रहती है। )

नूर०—क्या हुआ स्वामी ! ऐसा कुछ हुआ है क्या कि मेरे प्रभु मुझपर नाराज हो गये हैं ?

जहाँ०—तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा ? मैं !—हे जादूगरनी, तुमने मुझे अपने किस मोहन-मन्त्रसे मुग्ध कर रक्खा है। हे काली नागिन ! तुमने अपनी किस जहरीली साँससे मुझे शिथिल कर रक्खा है ! मैं तुममें मग्न हो रहा हूँ; उठ नहीं सकता, निकल नहीं सकता, रास्ता भूल गया हूँ; इस भूलभुलैयासे निकलनेकी ताकत ही नहीं है। मैं तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा ?

नूर०—तो जहाँपनाह नाराज नहीं हुए ?

जहाँ०—नहीं नूरजहाँ ! मैंने तो एक बातकी बात कही है। तुम्हें यह साम्राज्य दिया है, चाहे भोग करो, चाहे मिटा दो। मैंने जो साम्राज्य पाया है उसके आगे वह कुछ नहीं है।—चलो, नाट्य-शालामें चलें।

नूर०—चलिए।

जहाँ०—सुरा, सौन्दर्य और संगीत मुझे घेरे रहें और उसके ऊपर तुम अपने रूप, मधुर स्वर, चुम्बन और आलिङ्गनसे निहाल करती रहो प्रिये ! आँखोंके आगेसे वह पृथ्वी हट जाय।—कितने दिन यहाँ जीना है।

## पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरमें शाहजहाँका महल

समय—दोपहर

[ मेवाड़के राणा कर्णसिंह और शाहजहाँ बात-चीत कर रहे हैं । ]

कर्ण०—शाहजादा, आपके सत्कारमें मेरी ओरसे कोई कमी तो नहीं होती है ?

शाह०—कमी राणा साहब ! मैं अपने परिवारके सहित यहाँ जैसी शान्ति और सुखमें हूँ वैसी शान्ति और वैसा सुख तो मुझे आगरेमें भी नसीब न था । आपने मेरे लिए महल तैयार करा दिया है, सिंहासन तैयार करा दिया है और आराधनाके लिए मसजिद बनवा दी है ।

कर्ण०—आपको जब जो इच्छा हो, अनुग्रह करके मुझे जतला दिया करें, मैं अपनी शक्ति-भर उसे पूर्ण करूँगा ।

शाह०—कहनेके पड़ले ही मेरी सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं ।

[ सेनापति विजयसिंह का प्रवेश ]

कर्ण०—क्या खबर है विजयसिंह ?

विजय०—बाहर मुगल-सेनापति महाबतखॉ महाराणासे मिलनेके लिए खड़े हैं ।

कर्ण०—महाबतखॉ ?

विजय०—हाँ महाराणा !

कर्ण०—उन्हें सम्मानके साथ ले आओ ।

( विजयसिंहका प्रस्थान )

शाह०—महाबतखॉ एकाएक यहाँ क्यों आये हैं ?

[ विजयसिंहके साथ महाबतखॉका प्रवेश ]

महाबत०—बन्दगी शाहजादा ! बन्दगी राणा साहब !

शाह०—बन्दगी महाबतखॉ !

कर्ण०—बन्दगी सेनापति !

महा०—मैं अब सेनापति नहीं हूँ राणा साहब !

शाह०—ठीक है,—तुम तो अब बंगालके सूबेदार हो ?

महा०—वह भी नहीं हूँ । सम्राज्ञीके अनुग्रहसे मैं उस सम्मानसे भी खाली हूँ ।

शाह०—यह क्या ! तो अब तुम क्या हो ?

महा०—कुछ नहीं ।—एक पुराना राजपूत योद्धा हूँ । मैंने अपना धर्म अवरय छोड़ दिया है, पर मुझमें रक्त राजपूतका ही है ।—हाय, इस कलंकको धो बालने-का अब कोई उपाय नहीं है ! सैकड़ों वर्ष तपस्या करके भी मैं अब हिन्दू नहीं हो सकता ।—मगर अबकी यह इच्छा हुई है कि एकबार हिन्दुओंकी तरफसे लड़ूँगा, जैसे कि अब तक मुसलमानोंकी तरफसे लड़ता रहा हूँ ।

शाह०—क्यों महाबत ! मामला क्या है ?

महा०—मामला यही है कि इस समय सम्राट् जहाँगीर नहीं हैं; सम्राट् हैं नूरजहाँ । बिना अपराधके उन्होंने मुझे सेनापतिके पदसे हटाकर परवेजकी मातहतमें बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा । फिर बिना दोषके पंजाबको बदल दिया । इस बारे-में मैंने एक बार सम्राट्से मिलना चाहा था । इसके लिए मेरे दामादका सिर मुड़ाकर, गधेपर चढ़ाकर, उसे मेरे पास लौटा दिया । उसके बाद मैं खुद बादशाहके खीमेके द्वारपर गया । वहाँसे भी कोरा लौटा दिया गया । मामला यह है !

शाह०—इस औरतका साहस अद्भुत है !

कर्ण०—इसीसे आज अचानक आप यहाँ आये हैं खॉ साहब ?

महा०—मैं आपके यहाँ एक नौकरीकी खोजमें आया हूँ । धर्म मेरा चाहे जो हो मैं पुराना राजपूत सैनिक हूँ ।—मेवाड़ मेरी जन्मभूमि है । आप मेवाड़के राणा हैं । आपकी अवीनतामें मैं एक सेनापतिका पद चाहता हूँ । उसका अपमान नहीं करूँगा ।

कर्ण०—मैं इस समय आपको अपनी सारी मेवाड़-सेनाका सेनापति बनाता हूँ ।

महा०—मेवाड़के राणाकी जय हो ! ( शाहजहाँसे ) शाहजादा, मुझे नमस्कार-राम न समझिएगा । मैं मुगलोंका दास हुआ था, विधर्मी हुआ था, अपने देशके विरुद्ध युद्धमें खड़ा हुआ था, इसका कारण यही है कि मैंने सम्राट्का नमस्कार खाया था । अब मेरा बादशाहसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा सम्राट्ने खुद अपने हाथसे वह बन्धन काट दिया है । अब तक मैं पिजबेमें बन्द शेरकी तरह गरज रहा था; आज पिजबा तोड़कर बाहर निकल आया हूँ । अबकी मैं दिखाऊँगा कि अभीतक जो मैं मुगलोंके पक्षमें रहा सो अपने धर्मका खयाल करके,—मुगलोंकी शक्तिसे नहीं ।

शाह०—महाबतखॉ, मैं तुम्हारे इस क्रोधका कारण समझ रहा हूँ । अब

सम्राज्ञीके हाथका खिलौना हों रहे हैं और सम्राज्ञी एक मनमाना काम करने वाली औरत है । उसके नियम-हीन राज्यमें रहना किसी भी स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए असंभव है । इसीसे मैं भी उदयपुरके राणाका मेहमान होकर ठहरा हूँ । यदि तुम उस औरतको नीचा दिखाया चाहो,—दमन किया चाहो,—यहाँ तक कि अगर इस स्वेच्छाचारके राज्यको मिटाकर फिर हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना करना चाहो, तो उससे भी मुझे सहायता है । बल्कि इस उद्देश्यको पूरा करनेमें तुम्हारी सहायता भी कर सकता हूँ ।

महा०—शाहजादा, आप महत् और उदार हैं ।—राणा साहब, छद्म महीनेके लिए इस सेनामेंसे पाँच हजार राजपूत घुड़सवारोंको अपने अधीन रखनेका अबाध अधिकार मैं आपसे माँगता हूँ ।

शाह०—इन पाँच हजार सैनिकोंको लेकर तुम क्या करोगे महाबत ?

महा०—सम्राट्से भेंट करूँगा । वे मुझसे भेंट करना नहीं चाहते; मगर मैं उनसे भेंट करूँगा ।—राणा साहब, मैं और कुछ तनखाह नहीं चाहता । यह मेरी पेशगी तनखाह है । इतने अनुग्रहके लिए मैं आपके चरणोंमें जन्म भर बिका रहूँगा ।

कर्ण०—मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, मेवाब-सेनापति ।

महा०—वर्तमान सेनापति कौन है ?

कर्ण०—( विजयसिंहको दिखाकर ) ये हैं । इनका नाम विजयसिंह है ।

महा०—विजयसिंह, तुम पाँच हजार राजपूत सवार चुन लो । ऐसी सवार चुन लो जो जय प्राप्त किये बिना कभी युद्धके मैदानसे न लौटें । जो मुँहसे कहते बहुत कम हों, पर इशारेपर प्राण दे सकते हों ।

विजय०—जो आज्ञा सेनापति !

महा०—जो लोग इशारेपर प्राण दे सकें विजयसिंह !—राणा साहब, अब मुझे विश्राम करनेके लिए अनुमति दीजिए । मैं बहुत थका हुआ हूँ ।

कर्ण०—विजयसिंह, इन्हें विश्राम-स्थानमें ले जाओ । इनकी सब तरहसे खातिर करनेका प्रबन्ध मैं तुम्हें सौंपता हूँ ।—जाओ ।

महा०—जो लोग इशारेपर प्राण दे सकते हों ! समझे, विजयसिंह ?—राणा

साहब, जो अपनी इज्जतको जानसे बढ़कर समझता है उसकी इज्जतमें कमी बल नहीं आता । आदाब—

( महाबतख़ाँ और उनके पीछे विजयसिंहका प्रस्थान )

कर्ण०—शाहजादा साहब !

शाह०—राणा साहब !

कर्ण०—अब मेरी समझमें आ गया कि हिन्दू-जातिका पतन क्यों हुआ ?

शाह०—क्यों हुआ ?

कर्ण०—जब देखता हूँ कि महाबतख़ाँके समान धर्मात्मा, कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचार-भेदके कारण हम अपना कहकर जातिके भीतर लेकर गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंकी यह गिरी हुई दशा क्यों है । जहाँ जीवन है, वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है; और जहाँ मरण है, वहाँ वह खुद सौ टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाता है । हमने महाबतख़ाँको छोड़ दिया है, और आप लोगोंने इन्हें अपना लिया है । इसीसे आप लोग उन्नति कर रहे हैं और हम नीचे गिर रहे हैं ।

### छठा दृश्य

स्थान—सिन्धुनद

समय—प्रातःकाल

[ एक किनारेपर नूरजहाँ और मुगल सेना है और दूसरे किनारेपर राजपूतोंकी सेना है । बीचमें पुल है । पुलके ऊपर भी राजपूत-सेना है । हाथीकी पीठपर नूर-जहाँ बैठी है । उसके सामने घोड़ेकी पीठपर आसफख़ाँ है । ]

नूर०—महाबतख़ाँ सिर्फ पाँच हजार सेना लाया है और तुम उसीको देखकर भयसे विहल हुए जा रहे हो !—सेनापति कहाँ हैं ?

आसफ—उस पार ।

नूर०—मूर्ख हैं ! उस पार क्या कर रहे हैं जब कि सब सेना इस पार है ? सैनिकोंको आज्ञा दो कि वे उस पार जाकर राजपूत सेनापर धावा करें ।

आसफ—सेनापति कहाँ हैं ?

नूर०—मैंने तुम्हें सेनापति बनाया ।

आसफ—पुलक! रास्ता जाने लायक नहीं, उसपर राजपूत-सेनाने अपना अधिकार कर लिया है ।

नूर०—यह मैंने देख लिया है आसफ ! उसी राजपूत-सेनाके बीचसे जाओ ।

आसफ—इसमें बहुत-सी मुगल-सेना नष्ट हो जायगी ।

नूर०—होने दो !—जाओ, आक्रमण करो ।

( आसफका प्रस्थान )

नूर०—गजबका साहस है इस महाबतखॉका ! केवल पाँच हजार सेना लेकर इतनी बड़ी मुगल-सेनापर चढ़ाई करना बेशक बड़े ही साहसका काम है !—यह काहेका शब्द है ?

[ एक सिपाही घबड़ाया हुआ-सा प्रवेश करता है । ]

सैनिक—बेगम साहबा, हमारी सारी राजपूत-सेना महाबतखॉसे मिल गई ।

नूर०—मिल गई है ?

सैनिक—हाँ, जहाँपनाह ! वह युद्धमें एकाएक 'जय महाबतखॉकी' कहकर चिल्ला उठी । उसके बाद सबकी सब महाबतखॉकी सेनामें जाकर मिल गई ।

( पुलके बीचका हिस्सा तल उठता है )

नूर०—सम्राट् अभी तक उसी पार हैं ?

सैनिक—हाँ खुदावन्द !

नूर०—आगे बढ़ो—क्यों आसफ ?—

आसफ—(प्रवेश करके) सम्राज्ञी, राजपूत-सेना महाबतखॉकी सेनासे मिल गई है ।

नूर०—सो सुन चुकी हूँ । और कुछ ?

आसफ—राजपूत-सेनाने आग लगाकर पुल जला दिया है । उस पार जानेका कोई उपाय नहीं है ।

नूर०—सम्राट् उस पार हैं ?

आसफ—हाँ, वे उस पार हैं ।

नूर०—तैरकर उस पार जाओ और आक्रमण करो ।

आसफ—सम्राज्ञी—

नूर०—बस आक्रमण करो ।

( आसफका प्रस्थान )

( सैनिक जलमें फाँदकर तैरने लगते हैं । महाबतखॉकी सेना पुल छोड़कर किनारेपर जाकर उनपर गोलियाँ बरसाती हैं )

नूर०—( हाथीवानसे ) महावत, हाथी बढाओ, उस पार चलो ।

महा०—खुदावन्द—

( पर्दा बदलता है । )

अन्य दृश्य

स्थान—सिंधुके किनारे सम्राट्का डेरा

समय—प्रभात

[ द्वारके पास दो पहरेदार खड़े हैं । ]

दोनों—यह क्या है ? यह सब क्या है ?

[ दो सैनिक घबराये हुए प्रवेश करते हैं । ]

दोनों सैनिक—यही सीमा है ।—( पहरेदारोंसे ) बादशाह सलामत कहाँ हैं ?

१ पह०—क्या हुआ ! यह इतना शोर-गुल काहेका है ?

१ सै०—बादशाह कहाँ हैं ? जल्द बताओ ।

१ पह०—क्या हुआ, पहले सुनें तो ?

२ सै०—राजपूत-सेनाने शाही डेरेपर धावा कर दिया है ।

१ पह०—यह क्या ! कौन राजपूत-सेना ?

२ पह०—कितनी सेना है ?

२ सै०—पाँच हजार । जाओ, बादशाह सलामतको अभी खबर दो ।

१ पह०—और हमारी सेना क्या कर रही है ?

१ सै०—सब उस पार है ।

२ पह०—उसने खबर नहीं पाई ?

२ सै०—पाई है ।—जाओ, पहले बादशाहको खबर दो । अब समय नहीं है ।

२ पह०—मैं बुलाता हूँ बादशाहको । ( प्रस्थान )

२ पद०—हमारी सेना इस पार कितनी है ?

१ सै०—एक हज़ारसे अधिक न होगी।

१ पद०—वह सब क्या कर रही है ?

१ सै०—लड़ती है, मरती है, और क्या करेगी ? राजपूतोंकी सेना पागल हो रही है और खुद महाबतख़ाँ उसके सेनापति हैं । ( नेपथ्यमें बन्दूककी आवाज़ सुन पड़ती है । ) वे—वे—

२ सै०—वे आ गये ।

( युद्ध करते-करते महाबतख़ाँकी सेना और सम्राट्की सेना प्रवेश करती है । अपनी सेनाके पीछे खुद महाबतख़ाँ हैं । )

महा०—बस, अब हत्या मत करो । ( राजपूतोंके रुक जानेपर ) मुगल सिपाहियो, हथियार रख दो । नहीं तो वृथा तुम्हारी हत्या करनी पड़ेगी । मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता । मैं सम्राट्को चाहता हूँ । अगर प्राण प्यारे हैं, हथियार रख दो ।

( सम्राट्की सेना हथियार रख देती है । )

महा०—अब सम्राट्को बुलाओ ।

[ जहाँगीरका प्रवेश ]

जहाँ०—यह सब गोलमाल काहेका है ?—यह क्या ! महाबतख़ाँ ?

महा०—हाँ जहाँपनाह !

जहाँ०—महाबत, इसके माने ! मामला क्या है ! इस वेशमें ! इस तरह !

महा०—मैंने देखा, नहीं तो सम्राट्के दर्शन मिलना असंभव है । माफ़ कीजिएगा, जहाँपनाह मैं इस उपायका सहारा लेनेके लिए लाचार हुआ हूँ । सम्राज्ञीने जब कहला मेरा कि महाबतख़ाँको सम्राट्के दर्शन नहीं मिलेंगे तब महाबतख़ाँने प्रतिज्ञा की कि वह दर्शन जरूर ही करेगा । मैं जानता हूँ जहाँपनाह, कि अनुनय-विनयकी अपेक्षा युक्तिका जोर अधिक है; लेकिन तोपकी आवाज़के आगे कोई भी नहीं ठहरता,—न अनुनय-विनय और न युक्ति ।

जहाँ०—मेरी सेना कहाँ है ?

महा०—सब उस पार है । वह इस पार नहीं आ सकती जहाँपनाह ! उसकी आज्ञा न कीजिएगा । मैंने चीचका पुल जला दिया है ।

जहाँ०—भोः !—समझा । महाबत, तुम्हारी यह छिठाई मैंने माफ कर दी । अपनी सेनाको बिदा कर दो । चुप क्यों हो ?

महा०—जहाँपनाह, ये लोग मेरे जीवनकी रक्षाके लिए उचित जामिन लिये बिना जाना नहीं चाहते ।

जहाँ०—तुम्हारा मतलब क्या है ?

महा०—मेरा मतलब जहाँपनाहके दिलमें यह बात बैठा देना है कि महाबतखॉ जहाँपनाहका पालतू कुत्ता नहीं है कि आप जब 'तू' करके बुलावेंगे तब दुम हिलाता हुआ चला आवेगा; और आप जब लात मारकर दुतकार देंगे, तब वह दुम दबाकर भाग जायगा ।

जहाँ०—( भौंहे टेढ़ी करके ) महाबत, बेशक मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है । क्या जामिन चाहते हो, बोलो ?

महा०—कुछ नहीं । जहाँपनाह, शिकारके लिए जानेका समय हो गया है, चलिए । इसका विचार फिर कर लिया जायगा ।

जहाँ०—शिकारके लिए ?

महा०—हाँ जहाँपनाह, शिकारके लिए ।

जहाँ०—यहाँ तो शिकारपर जानेका मेरा घोड़ा भी नहीं है ।

महा०—मैं देता हूँ;—विजयसिंह, मेरा सबसे अच्छा घोड़ा जहाँपनाहके लिए ले जाओ । देखो, वह घोड़ा भारत-सम्राट्के योग्य हो और तुम खुद सेनासहित बादशाहके शरीर-रक्षक रहना । जाओ । ( विजयसिंहका प्रस्थान )

जहाँ०—( भौंहे टेढ़ी करके ) समझ गया ! तुम मुझे ही जामिनके तौरपर रखना चाहते हो । तो मैं तुम्हारा कैदी हूँ ?

महा०—ठीक कैदी नहीं हैं जहाँपनाह ! लेकिन हाँ, मैं जहाँपनाहके यशकी रक्षाका भार लेता हूँ । जहाँपनाह, भारतके सम्राट् हैं, आप महात्मा अकबरके पुत्र हैं । लेकिन आपका शासन इस समय एक मतवालेका मतवालापन, एक पागलका प्रलाप, एक उच्छृङ्खल व्यक्तिका स्वेच्छाचार हो रहा है । आप कौन हैं ? कहाँसे आये हैं ? किस हकसे आप एक बहुत प्राचीन सभ्य जातिके ऊपर राज्य-शासन करने बैठे हैं यदि वह शासन न्याय-संगत नहीं है ? हिन्दुओंने अपना साम्राज्य गवँ

दिया है, इसका कारण यही है कि उनका आशा-भरोसा 'यहाँ' नहीं, ( ऊपर उँगली उठाकर ) 'वहाँ' है । परलोकके बारेमें बहुत अधिक सोचते-विचारते रहकर उन्होंने इस लोकको गवाँ दिया है । तब भी याद रखिएगा सम्राट् ! यदि यह शासन अन्याय-पूर्ण होगा, यदि यह शासन एक विराट् अत्याचारका रूपान्तर-मात्र होगा, यदि आप हिन्दुओंकी असीम उदासीनताको छेड़कर उन्हें पागल बना देंगे; तो दम-भरमें मुगल-साम्राज्य सबेरेके कुद्दासेकी तरह विलीन हो जायगा । —आइए सम्राट् !

### सातवाँ दृश्य

स्थान—आगरेमें सम्राट् का अन्तःपुर

समय—सायंकाल

[ लैला और शहरयार बातचीत कर रहे हैं । ]

शहर०—सुना है लैला ? पिताका हाल सुना है ?

लैला—नहीं ।—सुननेको जी नहीं चाहता ।

शहर०—वे महाबतखॉके कैदी हैं । और तुम्हारी मा—

लैला—मेरी मा ?

शहर०—वे हाथीकी पीठपर बैठकर सिन्धु-नद पार होने जा रही थीं । लेकिन उन्हें फिर लौट आना पड़ा ।

लैला—उसके बाद ?

शहर०—उसके बाद वे भी, महाबतखॉके हाथमें पड़कर, कैद हो गईं । वे और आसफ कई जगह महाबतखॉकी सेनासे हारे और अन्तको उन्होंने महाबतखॉकी अधीनता स्वीकार कर ली ।

लैला—क्या बात है ! पापका दण्ड शुरू हो गया ? ईश्वर हैं ?

शहर०—लैला, तुम्हारा आचरण मुझे कुछ—

लैला—अद्भुत जान पड़ता है ! क्यों ?—इसीसे तो मैं तुमको इतना प्यार करती हूँ ।

शहर०—तुम्हारा चरित्र मुझे अद्भुत जान पड़ता है, इससे !

लैला—नहीं, तुम बहुत ही सीधे-सादे हो, इससे मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ।

शहर०—इतने दिन हुए, तब भी मैं तुम्हें समझ नहीं सका ।

लैला—समझ सकोगे भी नहीं !—प्रियतम, एक बात पूछती हूँ । मेरे सिवा और सबको क्या तुमने समझ लिया है ? अपने भाइयोंको, अपने बापको, ठीक समझ लिया है ?

शहर०—शायद समझ लिया है ।

लैला—समझ लिया है ? मेरे भोलेभाले स्वामी,—नहीं, प्रियतम, संसारमें आज तक कोई भी किसीको नहीं समझ सका । पृथ्वीके हर एक मनुष्यके हृदयका कमसे कम कुछ हिस्सा अन्यके निकट सदा अन्धकारमय रहता है । इसीसे शायद दयामय ईश्वरने ऐसा विधान किया है । अगर किसी दिन पृथ्वीपरके सब मनुष्योंका हृदय एकदम खुल जाय तो यह पृथ्वी बड़ी ही बीभत्स देख पड़े ।—ईश्वर ! इसके सिवा क्या तुम्हारे जगत्में और भी कोई नरक है ?

शहर०—कुछ समझमें नहीं आया ।

लैला—समझनेकी चेष्टा भी मत करो । तुम कुछ भी नहीं समझते, यही तो तुम्हारे चरित्रका माधुर्य है । उसे न खो देना । उसे अगर खो दोगे तो तुममें प्यार करनेकी और कोई भी चीज न रह जायगी । ( प्रस्थान )

शहर०—इतने दिन हो गये, पर मेरी समझमें नहीं आया कि लैला मुझे चाहती है या निरादरकी दृष्टिसे देखती है । कुछ भी हो, मैं उसके इस तरहके भावको नहीं सहूँगा । अबकी मैं साफ साफ कह दूँगा कि इस तरहका व्यवहार मुझे पसंद नहीं है ।

### आठवाँ दृश्य

स्थान—सम्राट्का शिविर

समय—रातःकाल

[ महाबतखॉ अकेले कुछ सोचनेकी मुद्रासे टहल रहे हैं । ]

महा०—नहीं, उसका मरना ही ठीक है । यह सम्राज्ञी ही सम्राट्के परिवारमें विच्छेद, विग्रह, अशान्ति के आई है; साम्राज्यमें विलास, विशृंखला और अत्याचार के आई है; पृथ्वीपर एक असह्य स्पर्धा, स्वेच्छाचार और पाप के आई है ।—उसे

मरना ही होगा । राज परिवारकी भलाईके लिए, साम्राज्यकी भलाईके लिए, मनुष्य जातिकी भलाईके लिए, उसका मरना ही ठीक है । और वह भी आज ही, जहाँ तक जल्दी हो सके ।—तो, वे सम्राट् आ रहे हैं ।

[ जहाँगीरका प्रवेश । महाबतख़ाँ सिर झुकाकर बन्दगी करते हैं । ]

जहाँ०—तुम्हारा मतलब क्या है, महाबत ?

महा०—एक बार मिलना चाहा था ।—बैठिए जहाँपनाह !

जहाँ०—( बैठकर ) अच्छी बात है । अब अपना मतलब कहो ।

महा०—( दम भर चुप रहकर धीरेसे ) जहाँपनाह, अपना निवेदन प्रकट करनेके पहले मैं एक बात जता देना आवश्यक समझता हूँ । सम्राट् यह न समझें कि मैं जहाँपनाहको अपने काबुमें पाकर किसी तरहका हुकूम चला रहा हूँ । जहाँपनाहके आगे मेरा एक अभियोग है । मैं केवल उसीका समदर्शितासे न्याय-विचार कराना चाहता हूँ ।

जहाँ०—किसके विरुद्ध तुम्हारा अभियोग है महाबतख़ाँ ?

महा०—( दम भर ठहर कर ) मुझे आशा है कि मैं जिसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर रहा हूँ, उसके रूप उसके पद और उसके अन्य सब गुणोंको जहाँपनाह भूल जायेंगे । सिर्फ यह विचार करेंगे कि वह व्यक्ति दोषी है या नहीं । फिर अगर वह दोषी प्रमाणित हो, तो उसे आप योग्य दण्ड दें । बस यही प्रार्थना करता हूँ ।

जहाँ०—अच्छी बात है । किसके विरुद्ध तुम्हारा अभियोग है ?

महा०—भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँके विरुद्ध ।

जहाँ०—सो मैं पहले ही समझ गया था । कहो क्या अभियोग है ?

महा०—पहला अभियोग यह है कि उन्होंने बन्दरके राजाके द्वारा शाहजादा खुसरूकी हत्या कराई है, उसीसे पूजनीया सम्राज्ञी रेवाकी मृत्यु हुई है ।

जहाँ०—दाय, बदनसीब शाहजादा खुसरू !

महा०—दूसरा अभियोग यह है कि उन्होंने कोई गूढ़ उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए उस हत्याका अपराध शाहजादा खुर्रमके मृत्यु मढ़ा, और इस तरह उन्हें विद्रोहके लिए उत्तेजित किया । और—

जहाँ०—और ?

महा०—तीसरा अमियोग यह है कि उन्होंने जहाँपनाहके नामकी आशमें अपनी वस्त्रखल प्रश्रुतिके अनुसार काम करके जहाँपनाहके पूज्य नाम और उज्ज्वल यश-को कलंकित किया है। इन तीनों अमियोगोंमेंसे अगर एकको भी सम्राट् झूठा समझे तो सम्राज्ञीको छोड़ दें।

जहाँ०—और अगर वे अपराधी ठहरे ?

महा०—तो दण्ड दें।

जहाँ०—( चुप रहते हैं। )

महा०—तो मेरे तीनों अमियोग सत्य हैं ?

जहाँ०—( चुप रहते हैं। )

महा०—इन अपराधोंके योग्य दण्ड केवल मृत्यु है।

जहाँ०—महाशतर्खा, सुनो—

महा०—न्याय-विचार कीजिएगा। धर्मकी दोहाई।

जहाँ०—( चुप रहते हैं। )

महा०—जहाँपनाहके विचारमें उनके योग्य दण्ड यही है कि नहीं ?

जहाँ०—हाँ, उनके योग्य दण्ड मृत्यु ही है।

महा०—तो फिर सम्राज्ञीके लिए मृत्यु-दण्डकी इस आज्ञापर दस्तखत कर दीजिए। ( कागज और कलम सामने रखता है। )

जहाँ०—तो भी—

महा०—सम्राट् विचार कर चुके। दण्ड दीजिए, दस्तखत कीजिए।

( जहाँगीर चुपचाप दस्तखत कर बैठे हैं। )

महा०—विजयसिंह, जाओ, यह आज्ञा सम्राज्ञीके डेरेपर ले जाकर उन्हें दिखा दो और उसके बाद तुम खुद इस आज्ञाका पालन करो। अब दुबारा आज्ञाकी जरूरत नहीं है।

( विजयसिंहका आज्ञा लेकर प्रस्थान )

महा०—यही तो सम्राट् जहाँगीरके योग्य न्याय-विचार है।—जहाँपनाहने जबतक स्वयं शासन किया, तब तक शत्रु भी उसके विरुद्ध कुछ कह नहीं सके, क्योंकि वह शासन न्याय संगत था। उसके विरुद्ध इस सम्राज्ञीके प्रभावने सम्राट्-

के उज्ज्वल यशको राहुकी तरह प्राप्त लिया। बंदेका काम है, उस यशको प्राप्त करने का। हम अपने सम्राट् जहाँगीरको फिर प्राप्त करना चाहते हैं। उसके बाद मेरा काम समाप्त हो जायगा।

[ विजयसिंहका प्रवेश ]

विजय०—सम्राज्ञी मरनेसे पहले एक बार सम्राट्से मुलाकात करना चाहती हैं।

( जहाँगीर महाबतखॉके मुँहकी ओर देखता है । )

महा०—विजयसिंह, मुलाकात किसलिए ?—पूछ आओ।

( विजयसिंह जाता है। जहाँगीर चुपचाप जमीनकी ओर निहारते रहते हैं । )

महा०—मालूम नहीं, सम्राज्ञी नूरजहाँने किस जादूके बलसे जहाँपनाहकी न्याय-निष्ठाको प्राप्त कर रक्खा था। मगर वह मोह,—वह मेघ जब हट जायगा तब जहाँपनाह ही मुझे धन्यवाद देगे, यह मैं जानता हूँ।

[ विजयसिंहका प्रवेश ]

विजय०—सम्राज्ञीने कहा है कि मरनेसे पहले पतिका दर्शन करना कौनका धर्म है।

महा०—अच्छा, उन्हें ले आओ। ( विजयसिंहका प्रस्थान )

महा०—सावधान जहाँपनाह ! सम्राज्ञीकी बातोंमें न आ जाइएगा, अपने मनको काबूमें रखिएगा। याद रखिएगा, आप वही सम्राट् जहाँगीर हैं—

( विजयसिंहके साथ नूरजहाँका प्रवेश। बादशाहको बन्दगी करना । )

नूर०—ये दस्तखत जहाँपनाहके हैं ?

( जहाँगीर चुप रहते हैं । )

नूर०—तो यह जाल नहीं है ? सचमुच ये जहाँगीरके दस्तखत हैं ?—यही जानना चाहती थी। मुझे अविश्वास हुआ। इस समय देखती हूँ, अविश्वासका कोई कारण नहीं है। अब मुझे कुछ कहना नहीं है। इस मरणमें मुझे कुछ चोभ नहीं है जहाँपनाह ! मैं मरती हूँ, अपने प्रियतमके हाथसे। वह मृत्यु भी मुझे प्रिय है। मैं इस मृत्युको अपने प्रियतमका दान समझकर खुशीसे,—शौकसे, गले लगाऊँगी। तो फिर मरनेसे पहले एक बार अपने प्रियतमका हाथ चूमे जाऊँ,—उसी हाथको, जिसने मेरी

मृत्युकी आज्ञापर दस्तखत किये हैं। प्रियतम !—( जहाँगीरका हाथ चुमती हैं । )

जहाँ०—नूरजहाँ, ये दस्तखत मेरे नहीं हैं।

नूर०—ये दस्तखत जहाँपनाहके नहीं हैं ?

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने सैकड़ों अपराध किये हैं, पर वे सैकड़ों अपराध भी मेरे निकट कुछ नहीं हैं। अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रकी हत्या और सम्राज्ञी रेवाकी मृत्यु भी जब मैंने चुपचाप सह ली, तब तुम समझ सकती हो नूरजहाँ, कि ये दस्तखत मेरे नहीं हैं। मेरे हाथने ये दस्तखत किये अवश्य हैं, लेकिन असलमें ये दस्तखत महाबतखॉंके ही हैं।

नूर०—( महाबतखॉंकी ओर देखकर ) समझ गई ! अब मुझको कुछ कहना नहीं है। महाबतखॉं, तुम जीते।—जब तुमने जहाँगीरके हाथसे नूरजहाँकी मृत्युकी आज्ञापर दस्तखत करा लिये,—जो पृथ्वीपर कोई नहीं करा सकता था, तब मेरी पूरी तरह हार हो गई। ( महाबतखॉंकी ओर जरा सिर झुकाकर ) मगर याद रखो महाबतखॉं, इस जयमें तुम्हारा कुछ गौरव नहीं है,—मैं एक दुर्बल स्त्री ही हूँ। तुम तो वीर हो, तुम पुरुष हो। और मैं जाहे जो हूँ, स्त्री ही हूँ। इस जयमें तुम्हारा कुछ पौरुष नहीं है। मैं सिर झुकाकर अपनी हार स्वीकार करती हूँ। ( जहाँगीरसे ) तो जाती हूँ नाथ, इस जीवनके राज्यसे मरणके देशमें,—इस आलोकके लोकसे अन्धकारके गढ़में, इस उत्सवके मन्दिरसे सन्नाटेके जगत्में। विदा होती हूँ प्राणेश्वर !

( घुटने टेकती है )

जहाँ०—( नूरजहाँको उठाकर और छातीसे लगाकर ) नूरजहाँ, मेरे जीवनका प्रकाश, मेरे हृदयकी अधीश्वरी ! मेरे इस जगत्का सर्वस्व !

नूर०—प्रियतमके प्रेमका प्रकाश मेरी मृत्युके मार्गको प्रकाशित करे !—प्राणेश्वर, मैं मरनेको नहीं डरती। किन्तु सच बात यह है कि मेरी मरनेकी इच्छा न थी। कौन मरना चाहता है ? जो सदा रोगी रहता है, जो चिर निर्वासित है, जिसका संसारमें कोई नहीं है,—कुछ नहीं है, जिसे लोगोंने छोड़ दिया है, जिससे अभिशाप देकर ईश्वरने मुँह फेर लिया है, वह भी नहीं मरना चाहता। ( कॉपते हुए स्वरमें ) मेरे तो सब कुछ है,—अनुपम रूप, अतुल ऐश्वर्य, देवताके सदृश पति, मेरे सब कुछ है। जीनेकी साध मेरी अमीतक नहीं मिटी, भोग करनेकी अभिलाषा पूर्ण नहीं

हुई, चाहनेकी चाह कम नहीं हुई ! नाथ ! प्रियतम ! ( जहाँगीरकी छातीमें सिर रखकर रोने लगती है । )

जहाँ०—( गद्गद स्वरसे ) महाबत !

महा०—सम्राट् !

जहाँ०—मेरा एक अनुरोध है ।—

महा०—आज्ञा कीजिए सम्राट् !—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत-सम्राट्को कोई भी आज्ञा हो, उसे साम्राट्का राजभक्त प्रजाजन महाबतखॉ सिर झुकाकर पालन करेगा ।

जहाँ०—महाबतखॉ, मैं तुमसे नूरजहाँके प्राणोंकी भिन्ना माँगता हूँ,— देखो, वह रो रही है ।

महा०— वही हो सम्राट् ! सम्राज्ञी, आप छुटकारा पा गई ! सम्राज्ञी नूरजहाँ, आपकी अमानुषी मनीषा, असाधारण रूप और विश्वविजयिनी शक्ति इतने दिनों-तक जो नहीं कर सकी, उसे आज दमभरमें आपके आँसुओंने कर दिखाया ।

— — —

## पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—काबुलके पास सम्राट्का डेरा

समय—प्रातःकाल

[ जहाँगीर और नूरजहाँ ]

नूर०—जहाँपनाह, मैं देखती हूँ कि आप महाबतखॉके प्रभुत्वको खूब सिर झुकाकर स्वीकार करते चले जाते हैं !

जहाँ०—नूरजहाँ, अपनी हालत याद रखो । इस समय हम महाबतखॉके हाथमें हैं । जिसके आगे हाथ जोड़कर मुझे तुम्हारे प्राणोंकी भित्ता मॉगनी पड़ी, उसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित करना हमें नहीं सोड़ता ।

नूर०—मैं अभियोग उपस्थित नहीं करती हूँ जहाँपनाह, मैं कहती हूँ कि जहाँपनाह बहुत जल्दी वशमें हो जाते हैं ।

जहाँ०—इस तीखे सत्यका तुम्हारी अपेक्षा मुझे खुद बहुत अधिक अनुभव है !—नहीं तो आज यह दशा न होती ।

नूर०—बेशक न होती ।

जहाँ०—सो चाहे जो हो ! मैं महाबतखॉके शासनमें कोई त्रुटि नहीं देखता । वह हमारे किसी भी काममें बाधा नहीं डालता है ।

नूर०—बिल्कुल नहीं !

जहाँ०—क्यों नूरजहाँ, हमने काश्मीर जाना चाहा था,—गये । काबुलमें आना चाहा था,—आये । महाबतखॉ नौकरकी तरह हमारे साथ है ।

नूर०—नौकरकी तरह ? बहुत ठीक है !

जहाँ०—वह नित्य सबेरे आकर सिर झुकाकर मुझे सम्राट् और तुम्हें सम्राज्ञी कहकर सलाम करता है ।

नूर०—बचे ही मुझमें हैं जहाँपनाह ।

जहाँ०—मुझमें रहूँ या दुःखमें रहूँ,—कोई चारा नहीं है ।

नूर०—नहीं ।

जहाँ०—क्या सोच रही हो ?

नूर०—सोचती हूँ, उपाय है कि नहीं ।

जहाँ०—नूरजहाँ, दुःखकी कल्पना करके दुःख क्यों पाती हो ?—शासनका बोझ बड़ा भारी बोझ है !—साम्राज्य गया, जाने दो । मुझे इसका चोभ नहीं है ।

( नूरजहाँ चुपचाप सोचती है )

जहाँ०—साम्राज्यका शासन जो चाहे करे । आओ, हम सुख-भोग करें । उसमें तो कोई बाधा नहीं देता ?

नूर०—नहीं देता यह उसका अनुग्रह है । लेकिन जहाँपनाह, वह अनुग्रह शरद्वृत्तुके मेघकी तरह बड़ा ही खामखाली है । वह बरसनेकी अपेक्षा गरजता बहुत है ।

जहाँ०—मगर जब उपाय नहीं है, तब उसके बारेमें सोचनेसे क्या होगा ?

[ द्वारपालका प्रवेश ]

द्वार०—खुदावन्द, सेनापति आपसे भेंट करना चाहते हैं ।

( जहाँगीरका प्रस्थान )

नूर०—( बाहर जाते हुए जहाँगीरकी तरफ देखकर, आँखोंकी ओट हो जानेपर एक लम्बी साँस लेकर ) अब और क्या उपाय है ? कुछ भी समझमें नहीं आता । घटा उठ रही है, राह खोजे नहीं मिलती ।—नूरजहाँ ! बस, अब क्यों बड़ी जाती हो ? लौटो ! अब भी लौटो !—ना, अब लौट नहीं सकती । पहाड़की ऐसी जगहपर आ गई हूँ कि यहाँसे चढ़नेकी बनिस्वत उतरना खोफनाक है । चलो, चलो, आगे बढ़ो नूरजहाँ ! अब भी शिखरपर चढ़ सकती हो । शतरंजके खेलमें वजीर गवाँ दिया है; तो भी जीत सकती हो । खेले जाओ ।

## दूसरा दृश्य

स्थान—काबुलका रास्ता

समय—शामका झुटपुटा

[ महाबतखॉ मार्गके किनारे खड़े दूर ताक रहे हैं । ]

महा०—अन्तको एक साम्राज्यका बोझ मेरे शिर आ पड़ा । यह तो मैंने चाहा नहीं था । इस ऐश्वर्यने आज एक जंजीरकी तरह मुझे बाँध रक्खा है । यह तंग

कोठरीके पत्थरकी धीवारकी तरह मानों मेरी साँसको बंद कर रहा है। घृणित कीबेकी तरह मानों मेरे शरीरपर रेंग रहा है। तो भी इसे छोड़नेका उपाय नहीं है। कैसा भारी बोझ है। तो भी इसे लादना होगा। बदला लेना चाहा था, सो ले लिया। किन्तु अब एक बड़े भारी कर्तव्यका बोझ मेरे सिरपर आ पड़ा है। राह चलते-चलते यह साम्राज्य हाथ लग गया है। इसका पालन करना होगा। राज्ञीकी प्राससे इसे बचाना होगा। पर सूर्य अस्त हो गया।—मैं भी खीमेमें जाऊँ। ( जाना चाहते हैं कि इसी समय कई एक लुटेरे आकर राह रोक लेते हैं। )

महा०—कौन हो तुम लोग ?

१ लुटेरा—हम काबुली हैं।

महा०—क्या चाहते हो ?

२ लुटेरा—यह सिर।

[ यह कहकर लुटेरे आक्रमण करते हैं। महाबतखॉ युद्ध करते-करते पीछे हटते जाते हैं। इसी समय कुछ सैनिकोंके साथ विजयसिंह प्रवेश करते हैं। काबुलियोंसे लड़ते-लड़ते घायल होकर विजयसिंह गिर पड़ते हैं। महाबतखॉ मौका पाकर फिर आगे बढ़ते हैं। लुटेरे भाग जाते हैं। ]

विजय०—सेनापति—

महा०—क्यों विजयसिंह—

विजय०—मैं सांघातिक रूपसे घायल हुआ हूँ। मेरी मृत्युमें अब देर नहीं है।

महा०—यह क्या विजयसिंह ! क्या इन्होंने तुम्हारी हत्या कर डाली ?

विजय०—कर डालने दीजिए, कुछ तानि नहीं है। मैं अपने प्रभुके जीवनकी रक्षा करके मरता हूँ।—मगर,—मरनेसे पहले एक बात कहे जाता हूँ,—प्रभुके—जीव-नको—लेनेके—लिए—एक—षड्यन्त्र,—अब—शेला—नहीं—जाता—साब—  
( मृत्यु )

महा०—(कुछ देर सोचकर) इसका बदला लूँगा। लेकिन यह सब क्या है ! काबुली लोग मुझपर क्यों आक्रमण करते हैं ! इसका तो कोई कारण समझमें नहीं आता। मैंने इन लोगोंका कुछ अनिष्ट नहीं किया।

[ एक सैनिकका प्रवेश ]

महा०—क्या है सैनिक ?

सैनिक—आपने सम्राट्के डेरेपर जो पहरा रख दिया था, उसमेंके पाँच सौ सिपाहियोंको काबुली लोगोंने आकर मार डाला ।

महा०—इस बर्बर जातिकी इतनी मजाल ! अच्छी बात है !—रामसिंह, मेरी सेनाको आज्ञा दो कि वह इस नगरके सारे काबुलियोंकी हत्या कर डाले । और इसी घड़ी यह हत्याकाण्ड शुरू कर दिया जाय ।

### तीसरा दृश्य

स्थान—सम्राट्का शिविर

समय—रात

[ अकेली नूरजहाँ ]

नूर०—हम सब इस संसारके खेलकी पुतलियाँ हैं । संसार कभी अत्यन्त आदर करके हमें गोदमें उठा लेता है और कभी अवहेलाके साथ पृथ्वीपर फेंक देता है । संसार हमारी हँसी और रोनेपर वैसे ही कान नहीं देता जैसे बालक अपने खिलौनेके आनन्द और रुठनेको समझ नहीं सकता । लेकिन, खिलौनेको गोदमें लेनेसे क्या वह सचमुच नहीं हँसता ? और घरके कोनेमें फेंक देनेसे क्या सचमुच ही उसे दुःख नहीं होता ? अथवा यह बात है कि मनुष्यके सुख-दुःखपर ईश्वर ध्यान ही नहीं देता । उसकी सृष्टिके महान् उद्देश्यके बीच इनके लिए स्थान ही नहीं है । उसके भारी कारखानेमें मनुष्यका सुख-दुःख, उससे निकली हुई चिनगारियों और धूम-राशिकी तरह है ।—उधर उसका लक्ष्य ही नहीं है । काल-चक्रकी लीला विश्व-घटना-मार्गको दक्षित करती चली जाती है, —विश्वकी वेदनाकी ओर उसकी दृष्टि नहीं है ।

[ जहाँगीरका प्रवेश ]

जहाँ०—यह काहेका शोरो-गुल है ! एक भयंकर कोलाहल तुम्हें सुन पड़ता है नूरजहाँ ?

नूर०—हाँ, सुन पड़ता है । जानते हैं जनाब, यह काहेका शोर है ?

जहाँ०—काहेका है ?

नूर०—यह मृत्युका आर्त-नाद है । महाबतख़ाँकी आज्ञासे काबुलियोंकी हत्या हो रही है ।

जहाँ०—काबुलियोंकी हत्या ! क्यों ?

नूर०—‘क्यों ?’—मुनिएगा ‘क्यों ?’ अफीमका नशा उतर गया ?

जहाँ०—मुनूँ तो, क्यों ?—इसका कारण ?

नूर०—इसका कारण यही है कि कई काबुलियोंने सन्ध्याके समय आज महाबतख़ाँपर आक्रमण किया था और हमपर पहरा देनेवाले पाँच सौ सिपाहियोंको भी उन्होंने मार डाला था । यही कारण है, विशेष कुछ नहीं ।

जहाँ०—काबुलियोंने महाबतख़ाँपर हमला क्यों किया ? और पहरेपरके सिपाहियोंकी हत्या क्यों की ?

नूर०—उनके बुरे ग्रह । वे यह तो जानते ही न थे कि महाबतख़ाँ ही सम्राट् हैं ! उन्होंने सोचा होगा कि महाबतख़ाँ सेनापति-मात्र है !

जहाँ०—मगर सेनापतिपर ही उन्होंने क्यों हमला किया ?

नूर०—जनाब, देखती हूँ कि आप बहुत-कुछ समझ गये हैं । फिर यह भी समझ लीजिए कि मैंने ही काबुलियोंको हत्याके लिए उत्तेजित किया था ।

जहाँ०—तुमने ?

नूर०—हाँ, मैंने ।—जहाँपनाह तो मानों आकाशसे गिर पड़े !—मैंने उत्तेजित किया था ।

जहाँ०—तुमने महाबतख़ाँको मारनेके लिए आज्ञा दी थी सम्राज्ञी ? उसी महाबतख़ाँको मारनेके लिए जिसने तुम्हारे प्राणोंकी भिक्षा दी थी ?

नूर०—वह भिक्षा क्या मैंने माँगी थी जहाँपनाह ?

जहाँ०—नहीं; मैंने माँगी थी । मैंने गलती की । तुम्हारा मरना ही अच्छा था !

नूर०—तो, अब सम्राट्को उसके लिए पछतावा हो रहा है ?

[ महाबतख़ाँका प्रवेश और बादशाहको बन्दगी करना ]

जहाँ०—महाबतख़ाँ, यह सब क्या है ? इतना शोरो-गुल क्यों मच रहा है ?

महा०—मैंने काबुलियोंकी हत्या करनेकी आज्ञा दी है । उनकी हत्या हो रही है ।

जहाँ०—हत्याकी आज्ञा क्यों दी है महाबतख़ाँ ?

महा०—जहाँपनाह, इसमें मेरा अपराध नहीं है । मैंने इन लोगोंका अपराध नहीं किया, तो भी इन्होंने—

[ द्वारपालका प्रवेश ]

द्वार०—जहाँपनाह, कुछ काबुली उमराव सम्राट्से मिलना चाहते हैं ।

जहाँ०—ले आओ ।

( द्वारपालका प्रस्थान )

महा०—जहाँपनाह, इन्होंने मेरी हत्याके लिए गुराडे लगा दिये थे । इन्होंने आपके पाँच सौ राजपूत सैनिकोंकी हत्या कर डाली है । मैंने उसका दण्ड दिया है ।

[ उमराव लोगोंका प्रवेश ]

उमराव—भारत-सम्राट् और भारत-सम्राज्ञीकी जय हो !

जहाँ०—आप लोग यहाँ किस मतलबसे आये हैं ?

१ उम०—जहाँपनाह, इन पुर-वासियोंकी हत्या रोकिए ।

( सम्राट्के आगे घुटने टेकते हैं, सम्राट् महाबतख़ाँकी ओर देखते हैं । )

नूर०—सम्राट् ये नहीं हैं, सम्राट् ( महाबतख़ाँको दिखाकर ) वे हैं ।

( उमराव लोग सम्राटेमें आकर महाबतख़ाँकी ओर देखकर फिर जहाँगीरकी ओर देखते हैं ।

जहाँ०—सच है । उमराव लोगो, सेनापतिके ऊपर अत्याचार हुआ है । इनसे क्षमा-प्रार्थना करो । इस बारेमें मुझे कुछ अधिकार नहीं है ।

१ उम०—सेनापति, तो आप इन पुर-वासियोंकी रक्षा कीजिए ।

महा०—महाशयो, यह बहुत अच्छी बात है ! मेरी ही हत्याका षड्यंत्र रचकर, अन्तको निष्फल होकर अब आप लोग मुझसे ही कृपाकी भिक्षा माँगने आये हैं ! मेरी इस राजपूत-सेनाके पाँच सौ जवानोंने आप लोगोंका क्या बिगाड़ा था ?

१ उम०—हम लोग इसका हाल कुछ नहीं जानते ।

महा०—आप लोग कुछ नहीं जानते ?

२ उम०—सचमुच हम कुछ नहीं जानते । हमारी बातपर विश्वास कीजिए ।

महा०—विश्वास नहीं होता ।

३ उम०—वह आर्त-नाद सुनिए । वह देखिए, उस नगरके कोनेमें धुआँ उठ रहा है । आपके सिपाही हम लोगोंके घरोंमें आग लगा रहे हैं ।

महा०—बहुत ठीक कर रहे हैं ।

४ उम०—सोचिए तो,—जिनकी हत्या हो रही है उनमें कितनी ही बेचारी औरतें, कितने ही धर्मिमा वृद्ध, कितने ही असहाय बच्चे हैं । उन्होंने तो कुछ

अपराध नहीं किया ।

महा०—क्यों या न करें, इससे कुछ मतलब नहीं । आप लोग लौट जाइए । प्रार्थना करना निष्फल है ।

४ उमराव—( जहाँगीर के आगे घुटने टेककर ) जहाँपनाह !

( जहाँगीर हाथोंसे मुँह ढँक लेते हैं । )

[ कई काबुली औरतें दौड़ती हुई आकर जहाँगीर के पैरोंपर गिर पड़ती हैं । ]

औरतें—जहाँपनाह, रक्षा कीजिए, —रक्षा कीजिए ।

जहाँ०—महाबत ।

( महाबत चुप )

औरतें—हमारे बच्चोंको बचाइए ।

नूर०—औरतो, सम्राट् ये नहीं हैं, ( महाबतको दिखाकर ) सम्राट् वे हैं ।

औरतें—( महाबतखों के पैरोंपर गिरकर ) जहाँपनाह, हम भिक्षा माँगती हैं, हमारे बच्चोंको बचाइए । बदलेमें हमारी जान ले लीजिए ।

महा०—फरीद, जाओ, इस हत्या-काण्डको बंद कर दो । कहो, सम्राट् की आज्ञा है !—महाशयो, जाइए । हत्या बन्द करनेकी आज्ञा मैंने मेज दी है ।

( फरीद और औरतोंके साथ उमराव लोगोंका प्रस्थान । )

महा०—शेरअली !

शेर०—जनाब !

महा०—खीमे उखाड़ो, सम्राट् अजमेरको लौट जायेंगे; इस बर्बर जातिके नगरमें प्रवेश नहीं करेंगे ।

( शेरअलीका प्रस्थान । महाबतखों वहीं टहलने लगते हैं । )

जहाँ०—( कुछ देर चुप रहकर ) महाबत !

महा०—जहाँपनाह !

जहाँ०—यह पिस्तौल लो, मुझे मार डालो । अब यह नहीं सहा जाता ।

महा०—समझ गया जहाँपनाह, मेरा इस तरह बे-रोक-टोक आज्ञा देना जहाँपनाहको पसंद नहीं आ सकता,—यह जानता हूँ । मगर हुजूर यह समझें कि मैं सम्राट् के अभिभावकके रूपसे आज्ञा देता हूँ । खुद सम्राट् नहीं बन बैठा हूँ ।

नूर०—सम्राट् और किसे कहते हैं महाबतखों ? तुम विद्रोह-घात करके, हमें

हमारे घरसे निकालकर, भीतरसे हमारे सामने ही घरका द्वार बंदकर, उसी घरके भीतर सिंहासनपर बैठ गये हो। तुम नमकहरामी करके, स्वामी और सेवकके सम्बन्धको उलट-पलटकर हमारे ऊपर हुकम चला रहे हो। तुम सम्राट् अकबरके पुत्र जहाँगीरको अपना कैदी बनाकर उसके नामसे स्वेच्छाचार कर रहे हो,—मनमाने हुकम जारी कर रहे हो !—सम्राट् और किसे कहते हैं महाबतख़ाँ ?

( महाबतख़ाँ चुप रहते हैं । )

जहाँ०—तो भी जबतक तुम न्याय-शासन करते रहे तबतक महाबतख़ाँ, मैंने कुछ भी नहीं कहा। मेरे शासनको अन्याय-शासन कहकर मेरे हाथसे उसे ले लिया था,—तो भी—

महा०—आज्ञा कीजिए सम्राट्, तो भी—

जहाँ०—तो भी मैंने ऐसा अन्याय कभी नहीं किया। मैंने एकके अपराधसे अनेककी हत्याका हुकम कभी नहीं दिया। मैंने न्याय-विचारमें अपने प्राणोंसे भी प्यारी बेगमके लिए मृत्यु-दण्डकी आज्ञापर दस्तखत कर दिये थे। फिर तुमसे मैंने—सम्राट्ने,—हाथ जोड़कर प्राणोंकी भिक्षा माँग ली थी। और तुम्हारा, तुम्हारा यही न्याय-विचार है। मैं सम्राट् होकर यह अन्याय-विचार देख रहा हूँ।—कुछ उपाय नहीं। नहीं महाबत, मुझे मार डालो। भारत-सम्राट् जहाँगीर घुटने टेककर तुमसे प्राण-दण्डकी भिक्षा माँगता है।

( महाबतको पिस्तौल देते हैं । )

महा०—जहाँपनाह, अपना साम्राज्य आप फेर लीजिए। आप इस समय वही सम्राट् हैं। मैं आपकी प्रजा हूँ। मैंने क्रोधमें आकर अपराध किया है। मुझे दण्ड दीजिए।

( सम्राट्के पैरोंके पास तलवार रख देते हैं । )

जहाँ०—महाबत, यह क्या ! तुम इतने उदार उरुच-हृदय हो ! ( दम-भर चुप रहकर ) महाबत, भ्रम और अपराध बीच-बीचमें मनुष्यमात्रसे हो जाता है, किन्तु स्वीकार करके जो अपनी इच्छासे उस अपराधका दण्ड सिर झुकाकर स्वीकार कर सकता है, वह देवता चाहे न हो, मगर मनुष्य वही है। किन्तु,—बाद बाद, शाबास तुम्हारी इन्सानियतको ! सुभान अल्लाह ! महाबतख़ाँ, यह तो अपनी तलवार। मैं तुम्हारे सब अपराधोंको क्षमा करता हूँ।

## चौथा दृश्य

स्थान — आसफके घरका आँगन

समय — रात

[ आसफ और कर्णसिंह खड़े बातचीत कर रहे हैं । ]

आसफ—शाहजादा परवेज बंगालमें ही मर गये । उसके बाद ही सम्राज्ञीने सम्राट्में एक आज्ञा-पत्र लिखा लिया कि उनकी मृत्युके बाद शाहजादा शहरियार सम्राट् होंगे । इसका कारण यह है कि खुर्रमके सम्राट् होनेपर नूरजहाँका प्रभुत्व चला जायगा, इस बातको वह अच्छी तरह जानती हैं ।

कर्ण०—शाहजादा खुर्रम कहाँ हैं ?

आसफ—गोलकुण्डमें ।

कर्ण०—सम्राट्का रोग बहुत कठिन है क्या ?

आसफ—हाँ, बहुत कठिन है ।

कर्ण०—आपको महाबतखॉकी कुछ खबर मिली है ?

आसफ—उड़ती हुई खबर है कि एकाएक राज्य छोड़कर फकीर होकर वे कहीं चल दिये हैं ।

कर्ण०—आश्चर्य है ! इस महाबतखॉका चरित्र मुझे एक पहेली-सा जान पड़ता है ।

आसफ—मैं उन्हें कुछ-कुछ जानता हूँ । वे पत्थरकी तरह कठिन होनेपर भी फूलसे भी बढ़कर कोमल हैं । उनका न्याय-विचार वज्रके समान दृढ़ होता है । मगर स्त्री-जातिके एक वृद्ध आँसूसे पसीज उठता है ।

[ इसी समय फकीरके वेशमें महाबतखॉका प्रवेश ]

आसफ—तुम कौन ? यह क्या !—महाबतखॉ हैं ?

महा०—किसी समय था ।

कर्ण०—आश्चर्य है ! आपहीकी बात हो रही थी सेनापति !

महा०—मेरा सौभाग्य ।

आसफ—तुम एकाएक यहाँ किस इरादेसे आ गये महाबतखॉ ?

महा०—आपको क्या कुछ आपत्ति है ? सम्राज्ञीके निकाले हुए महाबतखॉको क्या सम्राज्ञीके भाई आश्रय देना अस्वीकार करते हैं ? कहिए, मैं लौटा जाता हूँ ।

आसफ—सम्राज्ञीके बर्तावके लिए मुझे दोष न दो महाबतखॉ, उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। और अगर, खास मेरी बात पूछो महाबत, तो मैं मुक्तकण्ठ होकर कह सकता हूँ कि भारतवर्ष-भरमें ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिसपर मैं महाबतखॉके सदृश भक्ति रखता होऊँ। महाबत, मेरे घरमें क्या,—मेरे हृदयमें आओ।  
( गलेसे लगा लेता है । )

महा०—राणा साहब, मैं आपकी राजधानी उदयपुर गया था। वहाँ सुना कि आप आगरेमें हैं, इसीसे आपकी खोजमें आगरे आया हूँ।

कर्ण०—सेनापति !

महा०—अपने लिए मैंने आपसे छद्म महीनेका समय माँगा था। पेशगी तन-खादके तौरपर पाँच हजार राजपूत-सेना भी माँगी थी। सो सब मुझे मिला था। मेरा शेष जीवन आपके हाथ बिक चुका है।—अब आज्ञा कीजिए ?

आसफ—आश्चर्य है ! महाबत, तुम एक विचित्र पहेली हो !

महा०—कौन नहीं है !

आसफ—मगर तुम सबसे बड़ी पहेली हो !

महा०—क्यों आसफ ?

आसफ—तुमने इतना बड़ा साम्राज्य हाथमें पाकर छोड़ दिया !

महा०—छोड़ दिया।

आसफ—क्यों महाबत ?

महा०—तबियत हट गई।

आसफ—हट गई ! इसीसे तुम सम्राट्को और साम्राज्यको उस शेरनीके मुँहके सामने रख आये ?

महा०—रख आया। उसमें मेरा क्या था ? ईश्वरने हम जालको रचा है और वे ही इसको काटेंगे।

कर्ण०—महाबतखॉ, ईश्वर अपने हाथसे न कोई जाल तैयार करते हैं और न काटते हैं।—वे मनुष्यहीके द्वारा हरएक काम कराते हैं।

महा०—करावें। जिसके द्वारा इच्छा हो, उसके द्वारा वे इस जालको कटावें। मेरा क्या है ?

कर्ण०—नहीं महाबतखाँ, आपको यह जाल काटना होगा। आपको ईश्वरने जो शक्ति दी है सो ताले-कुजीमें बन्द कर रखनेके लिए नहीं दी।

महा०—मैं आपका किंकर हूँ। आज्ञा कीजिए।

कर्ण०—इस कारणसे मैं नहीं कहता सेनापति, मैं इसी दम उस बन्धनसे आपको छुड़ाये देता हूँ। आपके निजके महत्त्वपर ही मुझे पूरा भरोसा है। उसीपर मैं छोड़ता हूँ।

महा०—क्या करना होगा, राणा साहब ?

कर्ण०—इस निकम्मे सम्राट् जहाँगीरको उतारकर किसी योग्य पुरुषको सिंहासनपर बिठाना होगा।

महा०—वह योग्य पुरुष कौन है ?

आसफ—यह अवश्य है कि सम्राट्के किसी पुत्रको ही बिठाना होगा।

कर्ण०—निश्चय ही।

आसफ—तो खुर्रम और शहरयारमेंसे चुन लेना होगा। शहरयारके सम्राट् होनेसे नूरजहाँका ही शासन रहेगा। क्योंकि दुर्बल शहरयार उनका दायाद है।

कर्ण०—मेरी सलाह है, शाहजादा खुर्रमको सम्राट् बनाओ।

महा०—मेरी भी यही राय है।

आसफ—तो जान पड़ता है, सम्राट् जहाँगीरको गद्दीसे उतारनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। हकीमने कह दिया है कि वे महीने दो महीनेसे अधिक नहीं जी सकते। किन्तु नूरजहाँ बेगम शहरयारके लिए लड़ेगी, क्योंकि भविष्यमें शहरयार सम्राट् हो, यह बात उसने सम्राट्से लिखा ली है।

महा०—अच्छी बात है। हम इसके लिए तैयार रहेंगे। इस समय मैं बहुत थका हुआ हूँ।—आसफ, आज मुझे अपने घरमें ठहरनेके लिये जगह दोगे ?

आसफ—यह कैसा प्रश्न है ! महाबत, तुम मेरे भाई हो। आओ, भीतर आओ।—नहीं, ठहरो, मैं पहले देख आऊँ।

महा०—राणासाहब, आप आगरेके सिंहासनपर बैठाना चाहते हैं ?

कर्ण०—मैं ?

महा०—हाँ। चाहूँ तो इस सुयोगसे लाभ उठाकर नव-हिन्दुसाम्राज्यकी स्थापना कर सकता हूँ, पर मैं मुसलमान हूँ।—लेकिन जाने दो, जिसका उगाय नहीं उसे

सोचकर क्या होगा,—आप आगरेके सिंहासनपर बैठना चाहते हैं—उस समय इसका कुछ खयाल ही नहीं हुआ ।

कर्ण०—किस समय ?

महा०—जब साम्राज्य छोड़कर आया ।—तो भी, अभी समय है । आप हिन्दु-साम्राज्यका उद्धार करना चाहते हैं ?

कर्ण०—नहीं सेनापति ।

महा०—क्यों राणा ?

कर्ण०—कारण, इस साम्राज्यपर यदि हम हिन्दुओंका फिरसे अधिकार हो जायगा तो भी हम उसे बनाये न रख सकेंगे ।

महा०—क्यों ?

कर्ण०—कारण, मैंने सोचकर देखा है कि जबतक हमारी जातिके लोग मनुष्य न बन सकेंगे तबतक हिन्दु-साम्राज्य विकार-ग्रस्त पुरुषका स्वप्न ही है । हमारी जाति बहुत ही ओछे हृदयकी हो गई है, खों साहब ! भाईकी भलाईकी चेष्टा करना दूर रहा हम भाईका भलातक नहीं देख सकते । कोई अन्य जातिका पुरुष अगर हमको पीस भी ढाळे तो हम उसे सिर झुकाकर सह लेंगे । लेकिन, अपने ऊपर अपने जाति-भाईका न्याय-शासन भी हम न सह सकेंगे । मेरे सम्राट् होनेसे हिन्दुओंकी आँखें लाल हो उठेंगी । फिर देशमें रक्तकी नदियाँ बहेंगी । इसकी अपेक्षा गैरोंके शासनमें बड़े बड़े मजेसे हैं ।

महा०—सच बात है । नहीं तो, हिन्दुओंकी यह दुर्दशा क्यों होती !

[ आसफका फिर प्रवेश ]

आसफ—आओ महाबत !

महा०—बन्दगी राणा साहब !

कर्ण०—बन्दगी सेनापति ! बन्दगी मन्त्री महाशय !

आसफ—बन्दगी राणा साहब ।

( महाबत और आसफ एक ओरसे और कर्णसिंह दूसरी ओरसे जाते हैं । )

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—गोलकुण्डा

समय—रात

[ खदीजा अकेली गाती है । ]

गजल

निपट मेरा है, तो फिर जान पड़ता वह न मरा है ।

निहारूँ नित्य, पर परिचय न अब तक उसका पाया है ॥ निपट० ॥

हृदयके बीच है, पर पास पाती हूँ नहीं उसको ।

उसीकी खोजमें अपनेको भी मैंने गँवाया है ॥ निपट० ॥

करूँ मैं प्यार जितना ही, समझ पड़ता, न है काफी ।

मिले जो प्यार, उससे भी अधिक अभिलाष-आशा है ॥ निपट० ॥

मिले पलमें, फिर यक पलमें न मिलता है;—अजब रंग है ।

मिलनमें खो भी जाता है, विरहमें मिल ही जाता है ॥ निपट० ॥

शाह०—( प्रवेश करके ) खदीजा, अब्बाकी मृत्यु हो गई ।

खदी०—मृत्यु हो गई ?

शाह०—हाँ, मृत्यु हो गई,—यह लो, पढ़ो अपने पिताका पत्र ।

( खदीजा पत्र लेकर पढ़ती है )

शाह०—इस दुष्ट उच्च आशा रखनेवाली स्त्रीने अन्तको पिताकी भी जान ले ली । पिताको विलासमें डुबाकर, अचेत बनाकर, अन्तको उसने उन्हें जीवनके मध्याह्नमें ही मार डाला ।

खदी०—सम्राज्ञीने तो हत्या नहीं की ?

शाह०—इसे हत्याके सिवा और क्या कहा जा सकता है ! जैसे उसने शेरखाँको मारा, वैसे ही पिताको भी मारा ।

खदी०—साम्राज्यके लिए ?

शाह०—हाँ, साम्राज्यके लिए । ( लम्बी साँस लेकर ) देखो खदीजा, तुम्हारे पिताने लिखा है कि नूरजहाँ साम्राज्यके लिए युद्ध करेगी । वह सहजमें साम्राज्य न छोड़ेगी ।

खदी०—स्वामी, हम साम्राज्य लेकर क्या करेंगे ! चलो, कहीं दूरपर किसी जंगलके पासके गाँवमें जा रहें । वहाँ किसान बनकर सुखसे जीवन बितावें । एक भूमि-खराडके लिए मार-काट क्यों करेंगे ?

शाह०—खदीजा, अब भी तुम वही बालिका हो ।—पैरों पड़ता हूँ,—विनय करता हूँ,—जरा होश सँभालो ।

खदी०—हम अगर कबूतर-कबूतरी होते !

शाह०—पर मैं तो कबूतर नहीं होना चाहता ! अब चलो, हम आगरे चलनेके लिए तैयार हो जायँ ।

खदी०—नाथ ! ( शाहजहाँका हाथ पकड़ती है । )

( दोनोंका प्रस्थान )

### छाट्टा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा

समय—रात

( नूरजहाँ अकेली खड़ी है । )

नूर०—नूरजहाँ ! इस मृगतृष्णाके पीछे इतने दिनोंतक तो फिरी; मगर पाया क्या ? कुछ नहीं । तब भी जा रही हूँ । लेकिन आज समझमें आ गया कि अब मैं अपनी शक्तिसे नहीं चले रही हूँ । एक पुराना अभ्यास मुझे कठपुतलीकी तरह चलाये लिये जा रहा है । चलती हूँ;—क्योंकि चलनेके सिवा और उपाय नहीं है ।—मरने जा रही हूँ;—तब भी चलती हूँ !

[ शहरयारका प्रवेश ]

शहर०—मुझे बुलाया था सम्राज्ञी ?

नूर०—हाँ, शहरयार, सम्राट् मरनेसे पहले तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बना गये हैं । यह उनका आज्ञा-पत्र है । तुम सेनासहित आगरेमें जाकर वहाँके राज-सिंहासनपर अधिकार कर लो ।

शहर०—मैं !

नूर०—हाँ, तुम । मेरे भाई आसफ, महाबतखॉ और मेवाडके राणा एक हो

गये हैं। वे खुर्रमके लिए युद्ध करेंगे। खुर्रम अभी तक बहुत दूर है। उन लोगोंने अभी खुसरूके छोटेसे बालकको सिंहासनके लिए खड़ा किया है। तुम जाओ और उन लोगोंके साथ युद्ध करो।

शहर०—मैं युद्ध करूँगा ?

नूर०—कुछ मत कहो।—जाओ, मैं सेनाको आज्ञा दिये देती हूँ। ( प्रस्थान )

शहर०—मैं सम्राट् ? सोचकर भी कलेजा कौप उठता है। मैं युद्ध करूँगा ?—

यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं ! कर सकूँगा ?—

( सोचता है )

[ लैलाका प्रवेश ]

लैला—शहरयार !

शहर०—लैला !

लैला—तुम साम्राज्यके लिए युद्ध करने जाते हो ?

शहर०—हाँ, जाता हूँ लैला !

लैला—तुम महाबतख़ाँके साथ युद्ध करोगे ?

शहर०—इसमें आश्चर्य क्या है ?

लैला—युद्ध काहेसे करते हैं, भला बतलाओ तो ? युद्ध किसे कइते हैं, जानते हो ?

शहर०—लैला, तुम मेरी हँसी कर रही हो। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, यह जानती हो ?

लैला—जब इसी गौरवको तुम नहीं सँभाल सकते हो, तब सम्राट् होनेको तो बिलकुल नही सँभाल सकोगे। बोम्मेसे दबकर एकदम मर जाओगे।

शहर०—नहीं, मैंने खूब सोच-समझ लिया है। मैं युद्ध करूँगा।—क्यों न कर सकूँगा ? मैं क्या मनुष्य नहीं ?—तुम सदासे मेरा निरादर करती हो। मैं दिखा दूँगा कि मैं उतना नाचीज़ नहीं हूँ जितना तुम सोचती हो।—मैं युद्ध करूँगा। मैं सम्राट् होऊँगा।

लैला—स्वामी, तुम इस कुचक्री स्त्रीके फंदमें न पड़ो। मारे जाओगे। इस इरादेको छोड़ दो।

शहर०—सो क्यों ? मैं सम्राट् हूँ। पिता मुझे स्वयं सम्राट् बना गये हैं। अब केवल सिंहासनपर बैठना ही बाकी है। मैं सिंहासनपर बैठने जा रहा हूँ। अगर कोई बाधा डालेगा तो उसके साथ युद्ध करूँगा।

लैला—मेरे भोलेभाले स्वामी, सुनो ! भागो ! अगर तुम इस चकमें पड़ गये तो फिर मैं भी तुम्हें नहीं बचा सकूँगी । मेरी माताका फंदा राजसीका घास है । सावधान !

[ नूरजहाँका प्रवेश ]

नूर०—क्यों लैला, तुम शहरयारको मेरे खिलाफ भड़का रही हो ?

लैला—हाँ, अपने स्वामीको बचानेका मुझे अधिकार है ।

नूर०—बचानेका अधिकार है ?

लैला—हाँ, बचानेका अधिकार है ।—हाय नारी ! अबतक भी क्या तुम्हारी चमत्ताकी महत्वाकांक्षा नहीं मिटी ? अबतक भी तुम मेरे स्वामीको अपनी मुट्ठीमें रखकर उसकी आदमें शासन करना चाहती हो ?—जरा सोचो तो, यह सदाका रोगी, शिथिल शरीर, महाबतखोंके विरुद्ध युद्ध करने खड़ा हो सकेगा ?

नूर०—सहायताके लिए मैं तो हूँ ।

लैला—तुम ?—अब तुम्हारी क्या शक्ति है ! तुम्हारी शक्ति जो पुरुष था, वह आज मिट्टीके नीचे पड़ा हुआ है ! उसमें हाथ-पैर हिलानेकी भी ताब नहीं है ।—आज तुम्हारी ही कुमन्त्रणासे सेनापति महाबतखों, राणा कर्णसिंह, शाहजादा खुर्रम और तुम्हारे सगे भाई आसफ तुम्हारे विरुद्ध हैं । तुम हो ? नहीं,—अब यह दर्प तुम्हें नहीं सोहता । नहीं मा, अपने स्वामीको मैं तुम्हारे फन्देमें न पड़ने दूँगी ।

नूर०—लैला, तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मेरे विरुद्ध खड़ी होओ !

लैला—मेरा इरादा अच्छा है, और इसीसे मेरी इतनी मजाल है ।

नूर०—जानती हो, मैं सम्राज्ञी हूँ ।

लैला—थो कभी ।—वह दिन चला गया नूरजहाँ, अब सम्राज्ञी यदि कोई है, तो मैं हूँ ।—स्वामी, तुमने एक दिन कसम खाई थी कि मैं कभी सम्राट् न होऊँगा । सो, तुम कभी न होगे; मैं जानती हूँ, हो न सकोगे । अगर मेरे बार बार मना करनेपर भी तुम इस उच्च आशा रखनेवाली औरतके कुचकमें पड़ जाओगे, तो फिर मैं भी तुम्हारी रक्षा न कर सकूँगी । याद रहे । ( प्रस्थान )

नूर०—शहरयार, तुम मेरी इस ठीठ मुँहजोर लड़कीकी बात मत सुनो । तुम सम्राट् होओगे । मैं बहुत दिनोंसे भारतका शासन करती आ रही हूँ । मैं तुम्हारी

सहायता कलेंगी । तुम सम्राट् जहाँगीरके बनाये सम्राट् हो । तुम्हें कुछ डर नहीं है । आओ । सेना ले जाकर आगरेपर अधिकार करो । मैं और भी सेना लेकर पीछे आती हूँ । जाओ ।

( शहरयारका प्रधान )

नूर०—( कुछ देरतक अकेले पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहकर फिर धीरे-धीरे वृथा । वृथा । वृथा । हाय रे मूढ़ मनुष्य !—तू हँसता हुआ जय-डंका बजाकर सर्व-नाशकी ओर दौड़ा जा रहा है । जीता है केवल मृत्युके साथ और भी घनिष्ठताको स्थापित करनेके लिए ! सुन्नके लिए मिगना चकर काटना है उतना ही कष्ट पाता है !—यह जीवन एक जीती हुई मृत्यु है । हँसी हाहाकारका रूपान्तर है । प्रकाश अन्धकारका आर्तनाद है ।—मैं खूब समझ रही हूँ कि यह तैयारी वृथा है । मेरा पतन सामने ही है ।—एकदम पहाड़की चोटीके किनारेपर खड़ी हूँ । गहरे भँवरके बीच गिर रही हूँ । अब रक्षा नहीं है । विनाशकी लहरोंका कलकोल सुन रही हूँ । बहुत निकट आ गई हूँ । होनहारकी अदृश्य तर्जनी पास ही लक्ष्य करानी मनो मुझे बुलाकर कह रही है कि 'यहाँपर तुम्हारा सर्वनाश है, तब भी तुम्हें यहींपर जाना होगा ।' मैं ध्वंसके ओठोंमें एक बर्फके समान कठिन तीक्ष्ण हँसी देख रही हूँ ! इस हँसीका अर्थ यही है कि 'मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ ।—आओ ।'

## सातवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरका बादल-महल

समय—प्रातःकाल

[ महागत्खाँ, बंदरराज, कर्णसिंह और कर्मचारी लोग । ( सब मानों किसीकी राह देख रहे हैं ।) पास ही बाजा बजता है । शाहजहाँ प्रवेश करते हैं । ]

सब लोग—सम्राट् शाहजहाँकी जय हो !

महा०—जहाँपनाह, यह शत्रुपक्षका झंडा है और यह सम्राट् जहाँगीरका मुकुट है ! ( शाहजहाँको देते हैं । )

शाह०—महाबतखाँ, मेरे आनेके पड़के ही तुमने मेरे लिए साम्राज्य जीत रक्खा है । तुम्हें यथोचित पुरस्कार देनेकी योग्यता मुझमें नहीं है । जो सम्मान आज मैं

प्राप्त करता हूँ, वह सम्मान तुमने हाथमें पाकर भी मिट्टीकी तरह राहमें फेंक दिया ।

कर्ण०—जहाँपनाह, इनका काम सम्राट् होना नहीं है, इनका काम सम्राट् बनाना है ।

शाह०—सम्राज्ञी तकली ली गई ?

महा०—हाँ जहाँपनाह !

शाह०—उन्हें छोड़ दो महाबतखॉ !—मैं उनके भरण-पोषणके लिए वार्षिक दस हजार अशर्फीकी वृत्ति नियत करता हूँ ।

महा०—जो आज्ञा, जहाँपनाह !

शाह०—राज-परिवारके और सब लोगोंके लिए क्या बन्दोबस्त हुआ है ?

बंदरराज—खुदाबन्द !—वह सब बंदोबस्त मैं कर आया हूँ ।

शाह०—बंदरके राजा, तुम सब बन्दोबस्त कर आये हो ? सर्वनाश ! क्या बन्दोबस्त किया है, सुनू तो ?

राजा—खुसरूके दोनों पुत्रोंकी हत्या करा डाली है । परवेजके दोनों पुत्र पहले ही मर चुके थे, इसलिए उनकी हत्या करनेकी जरूरत नहीं पड़ी । शहरयारके पुत्रको गला दबाकर मार डाला है और शहरयारको अन्धा कर दिया है । उसको अब कभी सम्राट् न होना होगा ।

शाह०—( सिरपर जैसे वज्र गिर पड़ा हो, इस तरह सजाटोंमें आकर, फिर भ्रम स्वरमें—) यह क्या ! यह सब सच सच कह रहे हो या झूठ है ?—राजा !

राजा—सच है खुदाबन्द ! बंदा जहाँपनाहसे झूठ किस तरह बोल सकता है ?

शाह०—उः, कैसा भयानक कारण है ! कैसा पिशाचका काम है ! यह सब किसने किया ?

राजा—बन्देने ।

शाह०—नूरजहाँ बेगम ! तुमने अनेक पाप किये हैं । किन्तु, सब पापोंसे बढ़कर पाप तुमने यह किया कि अपनी क्षमतासे घेरे रहकर अबतक तुम इस पापीकी रक्षा करती रहीं । इतनी हत्या ! पिशाचोंकी ऐसी इतनी निठुराई ! मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह सब संभव है । पहरदार, इसे ( राजाको दिखाकर ) बौध लो ।

( पहरेदार बौधता है । )

राजा—हैं,—खुदावन्द !

शाह०—चुप !—राजा, तूने सोचा था कि अपने भाई और भतीजोंकी हत्यासे मैं खुश होऊँगा ? पृथ्वीपर कोई भी होता है ?—वे चाहे हजार भी शत्रुता करें — अपने भाई, अपने भतीजे,—उः—राजा, तुझे क्या सजा दें ? मृत्यु तेरे लिए काफी सजा नहीं है । तेरे योग्य दरुद अभीतक निकला ही नहीं ।—मगर इसका दरुद मृत्यु ही हो ।—मुझसे सोचा भी नहीं जाता । पहरेदार, इसे बाहर ले जाओ और महाबतखॉ, इसे अभी गोली मार दो ।

महा०—अबतक और किसी शाही हुक्मकी तामील इतनी खुरीके साथ मैंने नहीं की जहाँपनाह !

( दोनों सिपाही राजाको पकड़कर बाहर ले जाते हैं ।

महाबतखॉ भी साथ जाते हैं । )

शाह०—बदनसीब बच्चो ! अभागो भाई शहरयार ! इसके लिए मैं अपराधी नहीं हूँ ।

( बाहर गोली दागनेका शब्द,—राजाका आर्तनाद और पृथ्वीपर गिरना । )

शाह०—जाने दो ! पृथ्वीपरसे एक पापका भारी बोझ उठ गया !

कर्ण०—सम्राट, जो हो गया, उसके लिए अब उपाय नहीं है । अब जो लोग जीते हैं जहाँपनाह, उनका यथोचित प्रबन्ध कीजिए ।

शाह०—राणा साहब, आपका ऋण कहाँसे और किस तरह चुकाऊँ ? जब सम्राज्ञीकी सेना मेरा पीछा किये हुए थी, तब आपने आश्रय दिया और मेवाड़की सारी सेना लेकर मेरे लिए युद्ध किया ।

कर्ण०—क्योंकि मैं समझता था, धर्मके पक्षमें होकर अधर्मके विरुद्ध युद्ध कर रहा हूँ ।

शाह०—उसके बाद इतने दिनोंतक आपके यहाँ सर्वथा सुखसे रहा । यह महल, यह सिंहासन, यह मसजिद, आपने मेरे ही लिए बनवा री ।—राणा साहब, मेरे चले जानेपर मेरी यादगारके तौरपर क्या आप इन चिह्नोंको बना रहने देंगे ?

कर्ण०—अवश्य । जबतक कालके हाथोंसे इनकी रक्षा ही सकेगी, वे बने रहेंगे

सम्राट् !

शाह०—यह मसजिद ! यह तो हिन्दू-धर्मके तिरोधी विधर्मीकी मसजिद है !

कर्ण०—हिन्दू लोग पतित होनेपर भी अभीतक इतने हीन नहीं हुए हैं जहाँ पनाह ! जबतक मेवाड़के राजवंशमें एक भी चिराग जलानेवाला रहेगा तबतक इस मसजिदमें हररोज सायंकालको चिराग जलानेके लिए तेलकी कमी नहीं रहेगी ।

शाह०—धन्य है हिन्दुओंकी इस उदारताको ! और मैं मुसलमान हूँ, फिर भी मेरे शरीरमें तीन हिस्सा हिन्दू-रक्त है !—महाराणा, अपनी पगड़ी जरा ढीजिए तो ।

[ राणा पगड़ी उतारकर देते हैं । शाहजहाँ अपनी पगड़ी राणाको

पढ़नाकर उनकी पगड़ी आप पहनते हैं । ]

शाह०—कर्णसिंह, आजसे हम दोनों भाई हैं और मैं सदा हिन्दू और मुसलमानोंको भाई-भाई समझता रहूँगा ।

### आठवाँ दृश्य

स्थान—यमुनातटका शाही महल

समय—रात

[ पश्चिमी आकाशमें काले बादलका टुकड़ा देख पड़ता है । हवा बंद है ।

आँधी उठनेकी पूर्वावस्था है । आसफ और खदीजा

दोनों खड़े बातचीत कर रहे हैं । ]

खदीजा—अब्बा, मुझे तो जान पड़ता है, सम्राज्ञी पागल हो गई हैं । वे एकान्तमें टहलती हैं, हँसती हैं,—आप ही आप बकती हैं । और एक आश्चर्य यह देखती हूँ कि वे बीच-बीचमें मुट्ठी बाँधती हैं, बोलती हैं और एकटक उसीको ताका करती हैं ।

आसफ—हाय बदनशीव बहान ! उसकी लज्जा चली गई है । वह अब एक असीम शून्यताका अनुभव करती है !—इस समय वह कहाँ है ?

खदीजा—मालूम नहीं । देखूँ, जाकर खोजूँ ।—ओः, कंसी काली घटा छाई है ! आँधी उठेगी ।

[ इसी समय लैला अन्धे शहरयारका हाथ पकड़े हुए उपस्थित होती है । ]

लैला—मामा, आप यहाँ हैं ?

आसफ—क्यों लैला, साथमें कौन है ?

लैला—मेरे अंधे स्वामी ।

आसफ—शाहजादा शहरयार !—बेभारे शाहजादे, तुमको उन लोगोंने अन्धा कर दिया ?

शहर०—हाँ मामा, मुझे उन्होंने अन्धा कर दिया है । यह जगत् अब मेरे निकट असीम एकाकार है,—केवल एक गाढ़ा काला रंग !—सुनसान ! इसके सिवा और कुछ नहीं । आज मेरे निकट पृथ्वी, आकाश, नदी, पर्वत, वृक्ष, पत्नी,—सब एकसे हैं; सब बराबर हैं । उः—मामा, वे कैसे निटुर हैं जो मनुष्यको अन्धा कर देते हैं ?

लैला—( रुँधे हुए रोनेसे काँपते हुए स्वरमें ) हाय, वे कैसे निटुर हैं !

शहर०—लैला, तुमने मुझे मना किया था, मैंने सुना नहीं । मैंने कसम खाई थी,—फिर उसे तोड़ दिया । उसीका यह फल है ।

लैला—उन सब बातोंका याद करना व्यर्थ है प्रियतम, अतीत अतीत है । भविष्य-भविष्य है ।

शहर०—मेरा भविष्य !—मेरा भविष्य एक असीम निराशा है, विराट् विषाद है । जीवन व्यापी अन्धकार है । सबेरे सूर्यकी सुनहली किरणें अब मेरे सामने नाचती हुई नहीं आवेंगी; आधी रातका चन्द्रमा अब आकाश-सागरके ऊपर होकर चाँदनीकी पाल उबाता जाता नहीं देख पावेगा; नववसन्तकी अवाईसे हरी भरी पृथ्वीकी शोभा अब नहीं देख सकूँगा ।—लैला, सौन्दर्य केवल स्मृतिमात्र रह गया है ।

लैला—नाथ, दुःख क्या है, मैं तुम्हारे पास हूँ । वे तुम्हारा सब छीन ले सकते हैं, पर तुम्हारी लैलाको कोई नहीं छीन सकता । दुःख क्या है, मैं तो हूँ । मैं तुम्हें विश्वके सौन्दर्यकी कहानी सुनाऊँगी और उससे भी बढ़कर जो मनोहर है, जो आँखोंसे देखा नहीं जाता, केवल हृदयसे अनुभव किया जाता है, वही तुमको सुनाऊँगी । मैं तुम्हें सुनाऊँगी माताका स्नेह, स्त्रीका प्रेम, कन्याकी सेवा, भक्तकी भक्ति, कृतज्ञकी कृतज्ञता, त्यागीका त्याग !—कुछ दुःख नहीं है नाथ, मैं हूँ—

शहर०—लैला, मेरे लिए यही एक सुख है ! मैंने आँखें खोई हैं, मगर इतने दिनों बाद तुम्हें पाया है। मेरा तुमने कुछ भी कमी सुन्दर नहीं देखा ! मगर आज—

लैला—आज तुम सर्वाङ्गसुन्दर हो। तुममें जो कुछ कालिमा मैं देखती थी, उसे सम्राट् जहाँगीरकी मृत्यु धो ले गई। मृत्युके बाद अब उनसे मेरी कुछ भी शत्रुता नहीं रही। और तुम आज बहुत ही दीन हो, बहुत ही असहाय हो। आज मैं तुम्हें जीसे चाहती हूँ।—इतना मैंने तुम्हें कमी नहीं चाहा। आज तुम्हारे समान सुन्दर कौन है ?

आसफ—लैला, मैंने सुना है, छी देवी होती है। सम्राज्ञी रेवा वही देवी थी। किन्तु उनकी वह स्वर्गकी कहानी है। हम उसे अच्छी तरह प्रदण नहीं कर सकते। किन्तु, मनुष्य-लोकका संगीत स्वर्गकी कहानीको भी छुपा देता है, यह तुमने दिखा दिया।

खदीजा—वे सम्राज्ञी आ रही हैं ! वह देखो, आप ही आप क्या बक रही हैं ?

नूरजहाँ—( आप ही आप बकती हुई प्रवेश करती है ) उः, कैसी चमत्ता थी ! कैसे उसे मिटा दिया ! खतम कर दिया ! अब कुछ नहीं है ! ( मुट्ठी बाँधकर फिर खोलती है ) यह देखो ! ( सबको हाथ दिखाती है )

आसफ—सम्राज्ञी !—बहन !—

नूर०—क्या आसफ हो ? एक किस्सा सुनोगे ?—सुनो। एक था राजा, उसके थी रानी। राजा रानीको बहुत चाहता। मगर रानी,—वह तो मनुष्य थी नहीं। वह थी एक राक्षसी। माया जानती थी। उसने राज्यको मायापुरी बना डाला। फिर उस राजाके लङ्केको खाया, राजाको खाया, खाकर खुद राज्य करने लगी। उसके बाद राजाका जो एक लङ्का उस राक्षसीके घ्राससे बचकर विदेश भाग गया था, वह बड़ा हुआ। बड़ा होकर एक दिन डंका बजाता हुआ आया। उसने आते ही राक्षसीके बाल पकड़कर उसे दूर कर दिया।—खेल मिट गया !

आसफ—नूरजहाँ !

नूर०—कौन नूरजहाँ ? वह तो नहीं है। वह तो मर गई।

आसफ—सुनो मेहर—

नूर०—मेहर ? वह भी गई । वे दोनों मर गई; मेहरजिसा भी और नूर-जहाँ भी ।

आसफ—नहीं बहन,—

नूर०—‘नहीं’ कहनेसे ही विश्वास कर लूँगी ? मैंने अपनी आँखोंसे उन्हें मरते देखा है । मेहरजिसा थी शेरखोंकी स्त्री और नूरजहाँ थी जहाँगीरकी स्त्री । मेहरजिसाने मारा शेरखोंको और नूरजहाँने मारा जहाँगीरको । ( मेघ-गर्जन ) वह सुनो जहाँगीरके कण्ठका स्वर ! कैसा है !—काहेसे मारा ?—रूपसे ! रूपसे !—नहीं तो वे न मरते ! कोई भी न मरता ! कोई भी न मरता !—मेहरजिसा भी मर गई, नूरजहाँ भी मर गई ।

आसफ—पागलपनमें भी एक सिलसिला है ।

नूर०—मैंने मना किया था आसफ, ( आसफके कंधेपर हाथ रखकर )—परन्तु तुमने नहीं सुना । मर गई । मरेगी नहीं ? विष खा लिया,—मरेगी नहीं ?

खदीजा—फूफी !

नूर०—कौन ! ( भय और सम्मानके साथ )—ओ ! बेगम साहबा ! सलाम ! ( सलाम करके पीछे हटकर ) सलाम ! ( मेघगर्जन ) वह !—शेरखोंके गलेकी आवाज है ! कैसी गम्भीर है ? सुनती हो ?

खदीजा—फूफी, आँधी उठ रही है । भीतर चलि ए ।

नूर०—यह आँधी नहीं है । यह शेरखोंकी फिक्की है । उसने ज़िन्दगीमें कभी फिक्की नहीं दी । अब क्यों फिक्कता है ?

लैला—मा, भीतर चलो । आँधी उठ रही है ।

नूर०—उठे ! मूसलाधार वर्षा हो ! मैं खड़ी होकर बड़ी देखूँगी !—कैसी सुंदर है ! कैसी भयंकर है ! ( दोनों मुट्ठी बाँधकर सामने दोनों हाथ बढ़ाकर बार-बार चमकती हुई बिजलीकी ओर एकटक देखती है । )

खदीजा—ओ, कैसी तेज हवा चल रही है ! आँधी उठी है ।

आसफ—ओ, कैसी बिजली चमक रही है !—कैसा मेघ गरज रहा है !

लैला—मा मेरी,—आओ । ( नूरजहाँका हाथ पकड़ती है )

नूर०—( लैलाके कंधेपर हाथ रखकर ) लैला, तू मेहरजिसाको पहचानती थी ?

—वह थी तेरी मा और नूरजहाँ थी तेरी सौतेली मा । और मैं ?—तेरी कौन—मैं तेरी कोई नहीं हूँ । मैं तेरी कोई नहीं हूँ !—( करुण स्वरमें ) कोई नहीं ओहो हो हो हो ( रोती है । )

लैला—ना मा, तुम्हीं मेरा मा हो । नूरजहाँ या मेहरुन्निसा, कोई मेरी मा थी, तुम्हीं मेरी मा हो ।

नूर०—सच ?—ओः, कैसा आनन्द है ! सच ? तूने कैसे जाना लैला ( मेघ गर्जन ) वह फिर सुन !

लैला—नूरजहाँ और मेहरुन्निसा, दोनों ही सौभाग्यगविता उच्च आकांक्षा रखनेवाली सुखमें मग्न झिर्यो थीं । उनको तो बेटीकी जरूरत थी ही नहीं, मगर तुम मेरी दुखिया मा हो !—वह मा हो जिसका सब ऐश्वर्य लुट गया है और जो जोभसे नम्र हो रही है ! तुम्हें इस समय एक बेटीकी जरूरत है मा ! और इन मेरे अन्धे पतिको स्त्रीकी जरूरत है । आज तुम दोनोंको जितना मैं चाहती हूँ, उतना और कभी नहीं चाहता । अब मैं तुम्हारी ही हूँ । और किसीकी नहीं हूँ । अच्छा तो ( एक हाथसे शहरयारका और दूसरे हाथसे नूरजहाँका हाथ पकड़कर ) आओ मा ! आओ मेरे स्वामी ! अपनी समवेदनाके बाहुओंसे नित्य तुम्हारे दुःखके घावोंको धोती रहूंगी । यहींपर लड़कीका काम है । यहींपर साम्राज्य है ।

यवनिकापतन



